ISBN : 978-81-966958-4-2

स्व अध्ययन सामग्री
Self -Learning Material

# मुख्यमंत्री सामुदायिक नेतृत्व क्षमता विकास कार्यक्रम

## वैकल्पिक धारा – सामाजिक समरसता
## मॉड्यूल – 1

# समाज और संस्कृति
# (Society and Culture)

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय
चित्रकूट सतना (म.प्र.) 485334

मध्यप्रदेश जन अभियान परिषद्
(योजना, आर्थिक एवं सांख्यिकी विभाग, म.प्र.शासन)
35, राजीव गांधी भवन, द्वितीय खण्ड, श्यामला हिल्स, भोपाल 462002

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

# मॉड्यूल – 1 समाज और संस्कृति

**संस्करण 2022**

**अवधारणा :**

**श्री बी.आर. नायडू,** महानिदेषक

मध्यप्रदेष जन अभियान परिषद्, भोपाल

**मार्गदर्शन :**

**डॉ. जितेन्द्र जामदार,** उपाध्यक्ष

मध्यप्रदेष जन अभियान परिषद्, भोपाल

**श्री विभाष उपाध्याय,** उपाध्यक्ष

मध्यप्रदेष जन अभियान परिषद्, भोपाल

**डॉ. भरत मिश्रा,** कुलपति

महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विष्वविद्यालय, चित्रकूट

**डॉ, धीरेन्द्र कुमार पाण्डेय,** कार्यपालक निदेषक

मध्यप्रदेष जन अभियान परिषद्, भोपाल

**विशेष मार्गदर्शन :**

**के. श्याम प्रसाद, राष्ट्रीय संयोजक, समरसता**

**लेखक :**

**डॉ. रमेश माधवराव पांडव,** डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

**सम्पादक मण्डल :**

**डॉ. वीरेन्द्र कुमार व्यास,** महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विष्वविद्यालय, चित्रकूट

**डॉ. अमरजीत सिंह,** महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विष्वविद्यालय, चित्रकूट

**मुद्रक एवं प्रकाशक :**

कुलसचिव, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विष्वविद्यालय, चित्रकूट

**सम्पर्क :** हेल्पडेस्क चित्रकूट – 07670–265627, हेल्पडेस्क भोपाल – 0755–2660203

**वेबसाईट :** www.cmcldp.org, **ई–मेल** :cmcldpcourse@gmail.com

**लर्निंग मैनेजमेंट पोर्टल** :http://web700.128.202.new.ocpwebserver.com/

**लर्निंग एप्प :**

कॉपीराइट : महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विष्वविद्यालय, चित्रकूट, मध्यप्रदेश

आभार : इस पाठ्यक्रम की अध्ययन सामग्री अनेक स्रोतों, व्यक्तियों के अनुभव और संस्थाओं के प्रकाशनों तथा वेबसाईट्स पर उपलब्ध सामग्री के सहयोग से तैयार की गई है। सभी के प्रति कृतज्ञता और आभार।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री
मध्यप्रदेश

**दिनांक:- 16-06-2022**
**पत्र क्रमांक - 641/22**

# संदेश

प्राचीन काल से हम मानते आए हैं कि विद्या से विनय, विनय से योग्यता, योग्यता से धन, धन से धर्म और धर्म से सुख की प्राप्ति होती है। इसी ध्येय को ध्यान में रखते हुए यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी के नेतृत्व में केन्द्र सरकार ने शिक्षा को समाज एवं राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने के लिए नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020 निर्मित एवं अंगीकृत की है।

मध्यप्रदेश ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 को प्रभावी ढंग से लागू किया है। इसके समुचित क्रियान्वयन के लिए प्रयास भी हो रहे हैं। इस क्रम में मध्यप्रदेश सरकार महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, सतना और मध्यप्रदेश जनअभियान परिषद जनभागीदारी आधारित विकास के लक्ष्य की पूर्ति की दिशा में प्रयत्नशील है। राज्य सरकार "सबका साथ, सबका विकास, सबका प्रयास, सबका विश्वास के संदेश के साथ विकास का लाभ समाज के अन्तिम व्यक्ति को प्रदान करने के लिए मुख्यमंत्री सामुदायिक नेतृत्व क्षमता विकास कार्यक्रम (सी.एम.सी.एल.डी.पी.) संचालित कर रही है। इसके तहत समाज कार्य स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम का निर्माण और संचालन प्रारंभी किया जा रहा है।

मुख्यमंत्री सामुदायिक नेतृत्व क्षमता विकास कार्यक्रम मध्यप्रदेश शासन की महत्वाकांक्षी और अभिनव पहल है। इसका उद्देश्य समाज में वंचित और उपेक्षित समुदाय को शासकीय योजनाओं के माध्यम से जीवन स्तर में सुधार लाकर समाज को सक्षम नेतृत्व प्रदान करने के लिए प्रशिक्षित समूह तैयार करना है और सामाजिक कल्याण और लोगों की सहायता पर अधिक ध्यान केंद्रित करना है।

कुशल सामाजिक नेतृत्वकर्ता सरकार और वंचित लोगों के बीच सेतु का काम करते हैं। यह कोर्स उन लोगों के लिए अनुकूल है जो समाज के माध्यम से समाज में बदलाव लाना चाहते हैं। इससे सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र दोनों में रोजगार के अवसर उपलब्ध होंगे। आगामी माह जुलाई 2022 से सत्र 2022-23 में पाठ्यक्रम अतर्गत बी.एस.डब्ल्यू.एवं एम.एस. डब्ल्यू की कक्षाएं प्रदेश के समस्त विकासखण्डों में स्थित अध्ययन केंद्रों पर आरम्भ होने जा रही हैं।

मुझे आशा है कि यह कोर्स बी.एस.डब्ल्यू.(बैचलर ऑफ सोशल वर्क) एम.एस. डब्ल्यू (मास्टर ऑफ सोशल वर्क) प्रदेश के 313 विकास खण्डों में अध्ययन-सह-प्रशिक्षण केंद्रों के माध्यम से व्यवस्थित रूप से संचालित होगा और सामाजिक नेतृत्वकर्ताओं को सफलता प्राप्त होगी।

हार्दिक शुभकामनाएं।

(शिवराज सिंह चौहान)

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

**प्रो. भरत मिश्रा**
कुलपति
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय
विश्वविद्यालय, चित्रकूट

# संदेश

सुप्रसिद्ध समाज सेवी भारतरत्न राष्ट्रऋषि नानाजी देशमुख के दूरदर्शी प्रयासों और पहल के परिणामस्वरूप मध्यप्रदेश शासन द्वारा चित्रकूट में पुण्य सलिला माँ मंदाकिनी के सुरम्य तट पर महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय की स्थापना 12 फरवरी 1991 को एक पृथक अधिनियम 9, 1991 के द्वारा देश के पहले ग्रामीण विश्वविद्यालय के रूप में हुई। विश्वविद्यालय का ध्येय वाक्य है–**'विश्वं ग्रामे प्रतिष्ठितम्'** अर्थात ग्राम विश्व का लघु रूप है। सर्वांगीण ग्राम्य विकास के उद्देश्य की प्राप्ति हेतु विगत तीन दशकों से विश्वविद्यालय अपनी सम्पूर्ण रचनात्मक ऊर्जा का विनियोग कर रहा है। निर्धन के मित्र, विकास के चिंतक और शासन के सहयोगी के रूप में विश्वविद्यालय ने अपनी उल्लेखनीय सेवायें प्रदेश और राष्ट्र को समर्पित की हैं।

मुख्यमंत्री सामुदायिक नेतृत्व क्षमता विकास कार्यक्रम (सी.एम.सी.एल.डी.पी.) मध्यप्रदेश शासन की एक महत्वाकांक्षी और अभिनव पहल है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत विश्वविद्यालय मध्यप्रदेश जनअभियान परिषद् के सहयोग से प्रदेश के समस्त 313 विकासखण्डों में विकास की आवश्यकताओं हेतु वांछित मानव संसाधन तैयार करने के उद्देश्य से समाज कार्य के स्नातक और परास्नातक स्तरीय पाठ्यक्रमों का संचालन करने जा रहा है। विश्वविद्यालय ने इस कार्य का शुभारम्भ शैक्षणिक सत्र 2015–16 से किया था। स्नातक स्तरीय पाठ्यक्रम में अब तक एक लाख पच्चीस हजार से अधिक छात्र पंजीकृत होकर पाठ्यक्रम पूर्ण कर चुके हैं। पाठ्यक्रम की उपलब्धियाँ सहज ही गौरव की अनुभूति कराने वाली हैं।

'राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020' के युगान्तरकारी प्रावधानों ने भारतीय शिक्षा की दशा और दिशा में आमूलचूल परिवर्तन करने का शंखनाद कर दिया है। हमारा प्रदेश इसमें नेतृत्वकर्ता की भूमिका में है। हमारा विश्वविद्यालय विद्यार्थियों के लिए उपयोगी प्रावधानों को इस पाठ्यक्रम से अर्थपूर्ण रूप में जोड़कर इन्हें सत्र 2022–23 से पुनः संशोधित–परिवर्धित रूप में प्रारम्भ करने जा रहा है। पाठ्यक्रम यद्यपि दूरवर्ती पद्धति से संचालित है, किन्तु नियमित संपर्क कक्षाओं के आयोजन, उच्च गुणवत्ता की स्व–अध्ययन सामग्री एवं नई शैक्षिक प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हुए शिक्षार्थी को 'लर्निंग मैनेजमेंट सिस्टेम (एल.एम.एस.)' और 'स्मार्ट फोन' पर एक्सेस करने वाले एप्प के माध्यम से बेहतरीन शैक्षणिक अनुभव प्रदान करने की व्यवस्था सुनिश्चित कर रहा है। ऐसा करने वाला यह प्रदेश का पहला विश्वविद्यालय है। पाठ्यक्रम का लक्ष्य गांव–गांव में विकास की क्षमता और समझ रखने वाले परिवर्तन दूतों को तैयार करना है। यह विश्वविद्यालय के लक्ष्यों के केन्द्र में भी है और *'संगच्छत्वम् संवदत्वम्'* की अवधारणा वाले मध्यप्रदेश जन अभियान परिषद् के क्रिया–कलापों के केन्द्र में भी है। समान अवधारणा और कार्यक्रमों से ग्राम्य जीवन को पुष्पित–पल्लवित करने वाले इन संस्थानों का मणि–कांचन संयोग प्रदेश के विकास परिदृश्य के लिए अनुकूल और अनुकरणीय होगा। ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। पाठ्यक्रम से जुड़े शिक्षार्थियों, अभिभावकों, प्रशासकों, समन्वयकों और अन्य सभी को मेरी मंगलकामनाएँ!

**प्रो. भरत मिश्रा**

ISBN : 978-81-966958-4-2

## मॉड्यूल–1 समाज और संस्कृति (Society and Culture)

### इकाई–1 : परिवार, ग्राम, समाज, राष्ट्र

1.1 व्यक्ति, परिवार, ग्राम, समाज, राष्ट्र आदि की आवश्यकता परिभाषा और विशेषतायें

1.2 सामूहिक परिवारों से ग्राम, ग्राम की परम्पराये,

1.3 परिवार, ग्राम और समाज अंतरसंबंध

1.4. राज्य और राष्ट्र की संकल्पना, राज्य और राष्ट्र का अंतरसंबंध

### इकाई–2 : परस्पर पूरकता, पारस्परिक निर्भरता समाज की प्रकात्मता

2.1 पराम्परिक व्यवसायों की पूरकता और निर्भरता

2.2 ग्राम समाज जीवन में पूरकता के माध्यम

2.3 खानपान

2.4 वस्त्र

2.5. व्यवहार मेले

2.6 उपास्य देवी–देवता

2.7. मठ–मंदिर

2.8. तत्व–ज्ञान

2.9 परम्परा

2.10 जीवन की एकात्मता

### इकाई–3 : संस्कार, संस्कृति, सांस्कृतिक जीवन प्रवाह

3.1 पारिवारिक संस्कार

3.2 संस्कृति क्या है ?

3.3 सांस्कृतिक जीवन मूल्यों का हस्तांतरण

3.4 संस्कृति में परिवर्तनीय और अपरिवर्तनीय घटक

### इकाई–4 : सांस्कृतिक जीवन की वर्तमान समस्यायें

4.1 संस्कारों का क्षरण

4.2 सामाजिक विघटन

4.3 नैतिक मूल्यों का ह्रास

4.4 सामाजिक असुरक्षा, अशिक्षा, गरीबी

### इकाई–5 : प्रयोग

5.1 किसी चयनित ग्राम का क्षेत्र अध्ययन

5.2 अपेक्षित परिवर्तन की संभावनायें

5.3 ग्रामीण परम्परा एवं रूढ़ियाँ और परिष्कार

5.4 जातिगत रूढ़ियाँ एवं उनके सुधार

5.5 विभिन्न जातियों के सामाजिक संबंध

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

## इस मॉड्यूल के अध्ययन से निम्नवत क्षमतायें/कौशल विकसित होंगे –

- इस पाठ्यक्रम के अध्ययन से विद्यार्थी में समाज कार्य की परिचयात्मक समझ विकसित होगी।
- इस माड्यूल को पढ़कर भारतीय संस्कृति और मूल्यों के प्रति आपकी आस्था और समझ बढ़ेगी जिससे आप अपनी संस्कृति की विशेषताओं को पहचानने और उससे लाभ लेने का कौशल विकसित करेंगे।
- इस माड्यूल के अध्ययन से आपकी सामाजिक घटकों यथा व्यक्ति, समुदाय, परिवार, ग्राम और राष्ट्र की संकल्पनाएं विकसित होगी और इनकी निर्भरता को सूक्ष्म रूप में जान पायेंगे।
- इस माड्यूल के अध्ययन से आप सांस्कृतिक मूल्यों के क्षरण और सामाजिक विघटन की प्रक्रिया को न सिर्फ जान सकेगे बल्कि इन्हें रोकन मे सक्षम हस्तक्षेप से समुदाय को भी प्रभावित करेगे।
- आधुनिक जीवन शैली से आ रहे दोषों को पहचान पाने की समझ विकसित होगी। जिसका उपयोग आप अपने समुदाय के संरक्षण हेतू कर सकेगे।
- भारत की वर्षो पुरानी बहुलतावादी संस्कृति को छिन्न–भिन्न कर हमारे समरस सामाजिक तानेबाने को तोड़ने के वैश्विक षडयंत्र हो रहे हैं। यह माड्यूल आपको समसामयिक परिस्थितियों के विवेकपूर्ण विश्लेषण सामर्थ्य और कौशल प्रदान करेगा।

## मॉड्यूल की सतत विकास लक्ष्यों से सबंद्धता

- सामाजिक समरसता के बगैर विकास की कोई भी योजनाएं अपना वांछित फल नहीं दे सकती। समरसता के माहौल में ही रचनात्मकता और विकास पनपता है। इसलिए परोक्ष रूप से सभी सतत विकास लक्ष्यों के लिए समाज के विविध घटकों की समरसता अनिवार्य हैं।

## शासकीय विभागों एवं योजनाओं से संबद्धता

- संस्कृति विभाग।
- समाज कल्याण विभाग।
- मानवाधिकार एवं पर्यावरण संरक्षण विभाग। स्वैच्छिक संगठन एवं औद्योगिक संगठन।
- शैक्षणिक संस्थाएं।
- आनंद विभाग। धर्मस्व विभाग।
- शासकीय विभागों की गतिविधियाँ एवं योजनाओं को समुदाय स्तर पर सामूहिक सहभागिता के माध्यम से क्रियान्वित कराने में सहयोग।

## इंटर्नशिप/व्यावहारिक कार्य अभ्यास

- समरसता समाज के घटकों के परस्पर साहार्द और एकरसता पर निर्भर हैं। अतः इसकी इंटर्नशिप और कार्य अभ्यास के लिए आपके आसपास का समुदाय और समाज ही सबसे बड़ी सामाजिक प्रयोग शाला हैं। आपके आसपास के समाज के जातिगत ताने–बाने को मजबूत करने वाली परम्पराएं, लोक जीवन में रंग भरने वाले तीज त्यौहार और उत्सव तथा समृद्ध परम्पराओं में सक्रिय सहभागिता से होने वाला वास्तविक लोकशिक्षण ही असली कार्य अभ्यास हैं।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

## इकाई– 1 परिवार, ग्राम, समाज, राष्ट्र

**उद्देश्य :–**

इस इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे कि

- समाज कैसे बनता है? गांव का कारोबार कैसे चलता है?
- समाज के अन्यान्न घटक, कैसा व्यवहार करते थे?
- संस्कृति का उद्गम और विकास कैसा हुआ?
- समाज में आज फिर समस्याएं उत्पन्न हुई हैं, उनके संबंधों में दोष क्या है?
- समाज का प्रत्यक्ष दर्शन लेने से ही परिचय होता है।
- ध्येय की दृष्टि से कहाँ प्रारम्भ करना पड़ेगा? आधुनिक उपकरण कौन–से प्रयोग में लेने पड़ेंगे।

## व्यक्ति

पृथ्वी पर विविध प्रकार के प्राणी होते हैं। हर प्रकार के प्राणियों का समूह होता है। उसमें से किसी भी एक प्राणिमात्र को व्यक्ति कहते हैं। उस व्यक्ति में जो रंग रुप, देहाकृती आदि गुण होते हैं, वे उस समूह के अन्य व्यक्तियों के भी आम तौरपर गुण होते हैं। उन्हीं गुणों से वह समूह जाना जाता है। बहुत ही थोडे गुण एक व्यक्ति में समूह से अलग होते हैं।

ऐसा ही एक प्राणि मनुष्य होता है। मनुष्य अन्य प्राणियों से जिस महत्वपूर्ण चीज से अलग होता है, वह है, बुद्धी। आहार, निद्रा, भय और मैथुन यह बातें पशू और मनुष्य में समान होती हैं। बुद्धि और विकसित मन के कारण, मनुष्य चिंतनशील प्राणि है। मन से ही मनुष्य शब्द बनता है। बुद्धि से ही कर्तव्य का बोध होता है, जिसे शास्त्रीय भाषा में धर्म कहते हैं।

## परिवार

व्यक्ति, माता पिता से जन्म लेता है। परिवार साधारणत: पति, पत्नी और बच्चों के समूह को कहते हैं, वहीं रिश्ते बनना शुरू होते है। दुनिया के अधिकांश भागों में परिवार, सम्मिलित रूप से रहने वाले रक्त संबंधियों का समूह है, जिसमें विवाह और

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

दत्तक प्रथा, स्वीकृत व्यक्ति भी सम्मिलित हैं। परिवार में समूह को आवश्यक जीवन व्यवहार सिखाया जाता है।

## समाज

एक ही प्रकार के व्यक्तियों के समूह को, जिसका हर घटक समान पद्धति से जन्म लेता है, उसे समाज कहते हैं। मानव प्राणियों का समाज सुचारू रूप से चले, इसलिए कुछ तत्वों की, लिखित, अलिखित नियमों की आवश्यकता होती है। दुनिया मे अलग अलग जगहों पर वे तत्व अलग होने के कारण विविध प्रकार के समाज निर्माण होते हैं। उदा: भारतीय समाज, आफ्रिकन समाज, जापनीज समाज आदि आदि।

## राज्य

राज्य उस संगठित इकाई को कहते हैं, जो एक शासन (सरकार) के अधीन हो। राज्य संप्रभुता सम्पन्न हो सकते हैं। इसके अलावा किसी शासकीय इकाई या उसके किसी प्रभाग को भी 'राज्य' कहते हैं, जैसे भारत के प्रदेशों को भी 'राज्य' कहते हैं।

राज्य आधुनिक विश्व की अनिवार्य सच्चाई है। दुनिया के अधिकांश लोग किसी-न-किसी राज्य के नागरिक हैं। जो लोग किसी राज्य के नागरिक नहीं हैं, उनके लिए वर्तमान विश्व व्यवस्था में अपना अस्तित्व बचाये रखना काफ़ी कठिन है। वास्तव में, 'राज्य' शब्द का उपयोग तीन अलग-अलग तरीके से किया जा सकता है। पहला, इसे एक ऐतिहासिक सत्ता माना जा सकता है; दूसरा इसे एक दार्शनिक विचार अर्थात् मानवीय समाज के स्थाई रूप के तौर पर देखा जा सकता है; और तीसरा, इसे एक आधुनिक परिघटना के रूप में देखा जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि इन सभी अर्थों का एक-दूसरे से टकराव ही हो। असल में, इनके बीच का अंतर सावधानी से समझने की आवश्यकता है। वैचारिक स्तर पर राज्य को मार्क्सवाद, नक्सलवाद और अराजकतावाद आदि से चुनौती मिली है। लेकिन अभी राज्य से परे किसी अन्य मज़बूत इकाई की खोज नहीं हो पाया गया है। राज्य अभी भी प्रासंगिक है और दिनों-दिन मज़बूत होता जा रहा है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

## राष्ट्र

'राष्ट्र' शब्द की उत्पत्ति, चमकना अर्थ वाली 'राज्' धातु से हुइ है, उसका अर्थ है 'राजते, दीप्यते, प्रकाशते, शोभते इति राष्ट्रम्' अर्थात, जो स्वयं देदीप्यमान होने वाला है, वह 'राष्ट्र' कहलाता है, अथवा विविध वैभव से सुशोभित देश 'राष्ट्र' होता है।

राष्ट्र की परिभाषा, "एक ऐसे जन समूह के रूप में की जा सकती है जो कि एक भौगोलिक सीमाओं में एक निश्चित देश में रहता हो, समान परम्परा, समान हितों तथा समान भावनाओं से बँधा हो और जिसमें एकता के सूत्र में बाँधने की उत्सुकता तथा समान राजनैतिक, सामाजिक महत्त्वाकांक्षाएँ पाई जाती हों।"

ऊपर दी गई परिभाषा के आधार पर, हम कह सकते हैं कि राष्ट्र ऐसे लोगों का समूह है जो जाति, धर्म, भाषा, रीति-रिवाज, इतिहास आदि की सांझे कारणों से आपस में जुड़े हुए है, जिनका साँझा सभ्याचार है और जिनके अंदर मनोवैज्ञानिक सद्भाव की भावना विकसित हुई है।

जीवीजी कृष्णमूर्ति (भारत के पूर्व निर्वाचन आयुक्त)के अनुसार राष्ट्र शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम त्रग्वेद में हुआ है। वे कहते हैं," राष्ट्र शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेद में हुआ है। वेद ,ज्ञान और विज्ञान के अक्षय भंडार है। वेदों की अनुपम ज्ञान सम्पदा के कारण ही भारत अतीत में विश्व गुरु होने का गौरव प्राप्त करने में समर्थ हुआ था। विदेशी शासकों ने भारत की इस ज्ञान निधि को विलुप्त करने के लिए आधुनिक शिक्षा के नाम पर वैदिक मंत्रों की अनर्गल व्याख्या की। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द को ही यह श्रेय प्राप्त है, कि उन्होंने वेदों के सत्य ज्ञान को अपने ग्रंथों द्वारा उद्घाटित किया। विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधानरत वैज्ञानिक भी इस तथ्य को स्वीकार करने पर बाध्य है, कि प्रकृति की संरचना, नक्षत्रों की सृष्टि में भूमिका और गुरुत्वाकर्णष आदि के संबंध में जिन मान्यताओं का वेदों में वर्णन हुआ है, वे आज हो रहे वैज्ञानिक अनुसंधान से सम्पुष्ट हुई हैं।"

विश्वविख्यात लेखक, विचारक एवं मनीषी डॉ. श्याम सिंह `शशि' जी के अनुसार "यजुर्वेद में जो राष्ट्रीय प्रार्थना है उसमें एक समृद्धिशाली राष्ट्र के सुख समृद्धि एवं योगक्षेम के लिए वह सब कुछ प्राप्त करने का संकल्प किया गया है जो किसी भी

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

महान राष्ट्र के लिए अनिवार्य माना जाता है । "यह संकल्प पूर्ति करना ही राष्ट्र का उद्देश्य है। महत्ता है।

राष्ट्र (NATION) का अर्थ लोगों के समूह से भी है- "जिनकी एक जाति, एक इतिहास, एक संस्कृति, एक भाषा और एक निश्चित भू-भाग हो। राष्ट्रवाद उस विश्वास को कहते हैं, जिसके द्वारा प्रत्येक राष्ट्र को यह अधिकार है कि, जिस भू-भाग पर वे सदियों से रहते हैं, उस पर वे स्वतंत्र रूप से शासन कर सकें।"

## 1.1.2. सामूहिक परिवारों से ग्राम

ग्राम: मार्कण्डेय पुराण में ग्राम की व्याख्या मिलती है। वह इस प्रकार है, तथा शूद्रजनप्राया सुसमृद्धकृषीवला। क्षेत्रो पयोग भूमध्ये वसतिर्ग्राम संज्ञिता।। (इर्दगिर्द कृषियोग्य जमीन, उसमें कृषि सहाय्यक और कृषक, सुसमृद्ध बस्ती करके रहतें है, उसे ग्राम संज्ञा दी जाती है।)

इस तरह से, कईं परिवार जब एकत्रित,एक जगह निवास करते है, तब ग्राम निर्मित होता है। ग्राम जीवन उदित होता है। परिवार की अपनी व्यवस्था होने के बावजूद, सभी परिवारों की याने ग्राम की व्यवस्थाएं बनती रहती है। दियाबत्ती याने प्रकाश, पानी, रस्ते, वाहन, बझार, खेती, अन्य उद्योग आदि। समाज के तत्वों के अनुसार जीवनयापन चलता है। दीर्घ सामाजिक जीवन से सभ्यता का निर्माण होता है। इसे ही संस्कृति कहते हैं।

सेस्कृती की उत्पत्ती, विकास, वहन: संस्कृती का विकास, विवाह के रूपों से, परिवार के रूपों से घनिष्ट संबंधित है। लेविस मार्गन आदि विकासवादियों का मत है कि, मानव समाज की प्रारंभिक अवस्था में विवाह प्रथा (संस्कार) नहीं थी। इसके बाद सामाजिक विकास क्रम में यूथ विवाह (कई पुरुषों और कई स्त्रियों का सामूहिक रूप से पति पत्नी होना, बहुपतित्व, बहुपत्नीत्व और एकपत्नीत्व या एकपतित्व) की अवस्था आई। वस्तुत: बहुविवाह और एक पत्नीत्व की प्रथा असभ्य और सभ्य, सभी समाजों में पाई जाती है।

मानव शिशु के पालन पोषण के लिए लंबी अवधि अपेक्षित है। और पहले बच्चे की बाल्यावस्था में ही अन्य छोटे बच्चे उत्पन्न होते रहते हैं। गर्भावस्था और प्रसूतिकाल में माता की देख-रेख आवश्यक है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

मानव वैज्ञानिकों को कोई ऐसा समाज नहीं मिला, जहाँ विवाह संबंध, परिवार के अंदर ही होते हों। अत: पितृस्थानीय परिवार में पत्नी को और मातृस्थानीय परिवार में पति को अतिरिक्त सदस्यता प्रदान की जाती है। युगल परिवार में पति और पत्नी मिलकर अपनी पृथक् गृहस्थी स्थापित करते हैं। किंतु अधिकांश समाजों में यह परिवार बृहत्तर कौटुंबिक समूह का अंग माना जाता है और जीवन के अनेक प्रसंगों में परिवार पर बृहत्तर कौटुंबिक समूह का, घनिष्ट संबध के अतिरिक्त, नियंत्रण होता है। अमरीका जैसे उद्योग प्रधान देशों में कुटुंबियों के सम्मिलित परिवार के स्थान पर युगल परिवार की बहुलता हो गई है। यद्यपि वहाँ का समाज पितृवंशीय है, फिर भी युगल परिवार वहाँ किसी एक बृहत्तर कुटुंब का अंग नहीं माना जाता। युगल परिवार में पति पत्नी और, पैदा होने पर, उनके अविवाहित बच्चे होते हैं। सम्मिलित परिवारों में इनके अतिरिक्त विवाहित बच्चे और उनकी संतान, विवाहित भाई अथवा बहन और उनके बच्चे साथ रह सकते हैं। सम्मिलित परिवार में रक्त संबंधियों की परिधि भिन्न भिन्न समाजों में भिन्न भिन्न है। भारत जैसे देश में एक सम्मिलित परिवार में साधारणत: 10-12 सदस्य होते हैं, किंतु कुछ परिवारों में सदस्यों की संख्या 50-60 या 100 तक होती थी। अब पारिवारिक अवस्था बदल गई है।अब " हम दो,हमारे दो " की परिपूर्ती हो रही है।

विवाह, वंशावली, स्वामित्व और शासनाधिकार के विभिन्न रूपों के आधार पर परिवारों के विभिन्न रूप और प्रकार हो जाते हैं। मातृस्थानीय परिवार में पति अपनी पत्नी के घर का स्थायी या अस्थायी सदस्य बनता है, जबकि पितृस्थानीय परिवार में पत्नी पति के घर जाकर रहती है। मातृस्थानीय परिवार साधारणत: मातृवंशीय और पितृस्थानीय परिवार पितृवंशीय होते हैं। बहुधा परिवार की संपत्ति का स्वामित्व पितृस्थानीय परिवार में पुरुष को और मातृस्थानीय परिवार में नारी को प्राप्त है। प्राय: संपत्ति का उत्तराधिकारी ज्येष्ठ संतान होती है। किंतु यह आवश्यक नहीं है। जैसे- भारत की गारो जैसी जनजाति में सबसे छोटी लडक़ी ही पारिवारिक संपत्ति की स्वामिनी होती है। अनेक समाजों में परिवार के सभी स्त्री या पुरुष सदस्यों में स्वमित्व निहित होता है और कुछ में पुरुष तथा स्त्री दोनों को संपत्ति का उत्तराधिकार प्राप्त है।अब स्वतंत्र भारत में पुत्र,पुत्री समान अधिकारी होते हैं। हिंदुओं के लिए ' हिंदु कोड बिल 'है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

परिवार का शासन अधिकांश समाजों में पुरुषों के हाथ होता है। अंतर इतना है कि पितृवंशीय परिवारों में साधारणत: पिता अथवा घर का सबसे बड़ा पुरुष और मातृवंशीय परिवारों में मामा या माता का अन्य सबसे बड़ा रक्तसंबंधी (पुरुष) घर का मुखिया होता है। अत: संसार के अधिकांश भागों में और समाजों में पुरुष की प्रधानता पाई जाती है।

**भारत में परिवार :** भारत मुख्यत: कृषिप्रधान देश है और यहाँ की पारिवारिक रचना प्राय: कृषि की आवश्यकताओं से प्रभावित है। इसके अतिरिक्त भारतीय परिवार की मर्यादाएँ और आदर्श परंपरागत है। किसी अन्य समाज़ में गृहस्थ जीवन की इतनी पवित्रता तथा पिता, पुत्र भाई भाई और पति पत्नी के इतने स्थायी संबंधों का उदाहरण नहीं मिलता। यद्यपि विभिन्न क्षेत्रों, संप्रदायों,मतों और जातियों में सांपत्तिक अधिकार, विवाह तथा विवाहविच्छेद आदि की प्रथा की दृष्टि से अनेक भेद पाए जाते हैं, तथापि संयुक्त परिवार का आदर्श सर्वमान्य है। संयुक्त परिवार में संबंधियों का दायरा पति, पत्नी तथा उनकी अविवाहित संतानों से भी अधिक व्यापक होता है। बहुधा उसमें तीन पीढियों और कभी कभी इससे भी अधिक पीढियों के व्यक्ति एक घर में एक ही अनुशासन में और एक रसोईघर से संबंध रखते हुए सम्मिलित संपत्ति का उपभोग करते हैं और परिवार के धार्मिक कृत्यों तथा संस्कारों में भाग लेते हैं। यद्यपि मुसलमानों और ईसाइयों में संपत्ति के नियम भिन्न हैं, तथापि संयुक्त परिवार के आदर्श, परंपराएँ और प्रतिष्ठा के कारण इन सांपत्तिक अधिकारों का व्यावहारिक पक्ष परिवार के संयुक्त रूप के अनुकूल ही रहता है। संयुक्त परिवार का मूल भारत की कृषिप्रधान अर्थव्यवस्था के अतिरिक्त प्राचीन परंपराओं तथा आदर्श में है। रामायण और महाभारत की गाथाओं द्वारा यह आदर्श जन जन तक पहुँचते हैं।

कृषि ने सर्वत्र ही पारिवारिक जीवन की स्थिरता प्रदान की है। अत: भारतीय समाज में परंपरा से उत्पादन कार्य, उपभोग और सुरक्षा की बुनियादी इकाई परिवार है।अपवादों को छोडक़र भारतीय समाज पितृवंशीय, पितृस्थानीय और पितृभक्त है। यहाँ पुरुष की अपेक्षा नारी का दर्जा हीन माना जाता था। संपत्ति पर नारी का बहुत सीमित अधिकार माना गया था। फिर भी, गृहस्थी के अनेक मामलों में उसकी महत्ता स्वीकृत थी।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

संयुक्त परिवार और परिवर्तन : संयुक्त परिवार प्रणाली यद्यपि बहुत प्राचीन है, तथापि इसके आंतरिक स्वरूप में बहिर्विवाह, उत्तराधिकार तथा सांपत्तिक अधिकार के नियमों में, कालक्रम में परिवर्तन होता रहा है। औद्योगिक क्रांति ने पाश्चात्य देशों में परंपरागत संयुक्त परिवार भंग कर दिया है जिसके कारण बढ़ते हुए यंत्रीकरण के फलस्वरूप व्यक्ति को परिवार से बाहर मिली आजीविका सुरक्षा और उन्नति की सुविधाओं को बताया जाता है। भारत में भी औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप नई अर्थव्यवस्था और नए औद्योगिक तथा आर्थिक संगठनों का आरंभ हो चुका है। यातायात तथा संचार के नए साधन उपलब्ध हो रहे हैं और नगरीकरण तीव्रता से हो रहा है। पाश्चात्य विचारधारा और पाश्चात्य ढंग की शिक्षा दीक्षा तथा आदर्शों का प्रभाव भी कम नहीं है। विशेषकर स्वाधीनता के बाद विवाह, उत्तराधिकार, दत्तक ग्रहण और सांपत्तिक अधिकार के संबंध में जा कानून लागू किए गए हैं।

इसी प्रकार आयकर के आज के नियम भी पहले नियमों से अलग पड़ते हैं। ऐसी अवस्था में जब अर्थव्यवस्था और उत्पादन के साधनों में भी बुनियादी परिवर्तन हो रहा है, परिवार के शासन, रचना और कार्यों में हेरफेर होना अवश्यम्भावी है और वह परिलक्षित भी हो रहा है। किंतु अभी यह कहना कठिन है कि परिवार के संयुक्त रूप समाप्त हो रहे हैं। नगरों और ग्रामों में संयुक्त परिवार पहले से कितने कम हो गए हैं, इसका कोई प्रमाण नहीं है।

परिवर्तन के संबंध में विद्वानों में मुख्यत: दो प्रकार का विचार है। एक विचार के अनुसार परिस्थिति के प्रभावस्वरूप परिवार में कतिपय परिवर्तन होने पर भी उसका संयुक्त रूप नष्ट नहीं हो रहा है। दूसरे विचार के अनुसर औद्योगिक सभ्यता भारत में भी संयुक्त परिवार को बहुत कुछ उसी युगल परिवार के रूप में उपस्थित करेगी जो अमरीका तथा यूरोप में प्रादुर्भूत हुआ है। वर्तमान पारिवारिक विघटन एंव परिवर्तनों को इस प्रक्रम की आरंभिक अवस्था बताया जाता है।

## 1.1.3. ग्राम की परम्पराएं :

भारतीय ग्राम मे विविध व्यवसायिक रहते हैं। पारस्पारिक सहयोग से जीवनयापन होता है। दिन, मास, ऋतु तथा वर्ष के कार्यक्रम भी नियमित होते हैं। हर ग्राम मे थोडा फर्क भी होता है। हर व्यवसाय की स्वतंत्र परम्परा के साथ साथ उस ग्राम की

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

परम्परा बनती है। जैसे की, राम जन्मोत्सव, हनुमान जन्मोत्सव, किसी ग्राम देवता का विशेष कार्यक्रम, ऋतु बदलते समय वन भोजन, साल की कोई एक अमावस्या या पौर्णिमा, किसी महात्मा की समाधि उत्सव आदि । इसके निमित्त सामूहिक पाकशाला तथा भोज, नृत्य,गीत,लीलाएं। गीतों के प्रकार, लहजा,ताल भी अलग, हिंदम अलग और आकर्षक। लोक गीतों का बहलानेवाला ध्वनी। ऐसे गाँव में भेदों का सिलसिला शुरू हुआ। वर्णभेद, जाति भेद, उच्च–नीच, गरीब, अमीर आदि आदि इसी से विषमता भी फैल गईं। और तो और अस्पृश्यता का प्रवेश हुआ। यह दोष निर्माण होने के कारण, अच्छा तत्वज्ञान बदनाम हुआ। जो बलस्थान थे, वे ही दोष–स्थान हो गये।

## पंचायत :

## भारत में स्थानीय स्वशासन संगठन:

भारत की पंचायती राज प्रणाली में गाँव या छोटे कस्बे के स्तर पर ग्राम पंचायत या ग्राम सभा होती है ,जो भारत के स्थानीय स्वशासन का प्रमुख अवयव है। सरपंच, ग्राम सभा का चुना हुआ सर्वोच्च प्रतिनिधि होता है। प्राचीन काल से ही भारतवर्ष के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन में पंचायत का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सार्वजनिक जीवन का प्रत्येक पहलू इसी के द्वारा संचालित होता था।

## प्राचीन काल :

वैदिक काल में भी पंचायतों का अस्तित्व था। ग्राम के प्रमुख को ग्रामणी कहते थे। उत्तर वैदिक काल में भी यह होता था जिसके माध्यम से राजा ग्राम पर शासन करता था। बौद्धकालीन ग्रामपरिषद् में "ग्राम वृद्ध" सम्मिलित होते थे। इनके प्रमुख को "ग्रामभोजक" कहते थे। परिषद् अथवा पंचायत ग्राम की भूमि की व्यवस्था करती थी तथा ग्राम में शांति और सुरक्षा बनाए रखने में ग्रामभोजक की सहायता करती थी।

जनहित के अन्य कार्यों का संपादन भी वही करती थी। स्मृति ग्रंथों में भी पंचायत का उल्लेख है। कौटिल्य ने ग्राम को राजनीतिक इकाई माना है। "अर्थशास्त्र" का "ग्रामिक" ग्राम का प्रमुख होता था, जिसे कितने ही अधिकार प्राप्त थे। अपने सार्वजनिक कर्तव्यों को पूरा करने में वह ग्रामवासियों की सहायता लेता था। सार्वजनिक हित के अन्य कार्यों में भी ग्रामवासियों का सहयोग वांछनीय था। ग्राम की एक सार्वजनिक निधि भी होती थी, जिसमें जुर्माने, दंड आदि से धन आता था। इस प्रकार ग्रामिक और

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

ग्रामपंचायत के अधिकार और कर्तव्य सम्मिलित थे जिनकी अवहेलना दंडनीय थी। गुप्तकाल में ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई था, जिसके प्रमुख को "ग्रामिक" कहते थे। वह "पंचमंडल" अथवा पंचायत की सहायता से ग्राम का शासन चलाता था। "ग्रामवृद्ध" इस पंचायत के सदस्य होते थे। राजा हर्ष ने भी इसी व्यवस्था को अपनाया। उसके समय में राज्य "भुक्ति" (प्रांत), "विषय" (जिला) और "ग्राम" में विभक्त था। हर्ष के मधुबन शिलालेख में सामकुंडका ग्राम का उल्लेख है जो "कुंडघानी" विषय और "अहिछत्र" भुक्ति के अंतर्गत था। ग्रामप्रमुख को ग्रामिक कहते थे।

## दक्षिण भारत :

नववीं और दसवीं शताब्दी के चोल और उत्तर मल्लूर शिलालेखों से पता चलता है कि दक्षिण में भी पंचायत व्यवस्था थी। ग्राम मे स्वशासन का विकास , चोल शासन की मुख्य विशेषता थी। इन ग्राम शासन इकाइयों को "कुर्रुम" कहते थे, जिनमें कई ग्राम सम्मिलित होते थे। कुर्रुम एक स्वायत्तशासी इकाई थी। शासनसत्ता एक महासभा में निहित होती थी, जिन्हे ग्राम के लोग चुनते थे। सभा अपनी समितियों के माध्यम से शासन का काम चलाती थी। इस प्रकार की आठ समितियाँ थीं जो जनहित के विभिन्न कार्यों को करने के अतिरिक्त शांति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए उत्तरदायी थीं। ये न्याय संबंधी कार्य भी करती थीं। ग्राम पूरी तरह स्वायत्तशासी था। और इस प्रकार केंद्रीय शासन अनेक दायित्वों से मुक्त रहता था। मुस्लिम और मराठा कालों में भी किसी न किसी प्रकार की पंचायत व्यवस्था चलती रही और प्रत्येक ग्राम अपने में स्वावलंबी बना रहा।

## ब्रिटिश काल :

अंग्रेजी शासनकाल में पंचायत-व्यवस्था को सबसे अधिक धक्का पहुँचा और वह यह व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। फिर भी ग्रामों के सामाजिक जीवन में पंचायतें बनी रहीं। प्रत्येक जाति अथवा वर्ग की अपनी अलग-अलग पंचायतें थीं, जो उसके सामाजिक जीवन को नियंत्रित करती थीं और पंचायत की व्यवस्था एवं नियमों का उल्लंघन करनेवाले को कठोर दंड दिया जाता था। शासन की ओर से इन पंचायतों के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं किया जाता था। आरंभ से ही अंग्रेजों की नीति यह रही कि शासन का काम, यथासंभव, अधिकाधिक राज्य कर्मचारियों के हाथों में ही रहे। इसके

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

परिणामस्वरूप फौजदारी और दीवानी अदालतों की स्थापना, नवीन राजस्व नीति, पुलिस व्यवस्था, गमनागमन के साधनों का विकास आदि कारणों से ग्रामों का स्वावलंबी जीवन और स्थानीय स्वायत्तता धीरे-धीरे समाप्त हो चली। परंतु आगे चलकर अंग्रेजों ने भी यह अनुभव किया कि उनकी केंद्रीकरण की नीति से शासनभार दिन प्रति दिन बढ़ता ही जा रहा है। दूसरी ओर राष्ट्रीय जाग्रति के कारण स्वायत्तशासन की माँग भी बढ़ रही थी। अतएव उन्हें विकेंद्रीकरण की दिशा में कदम उठाने को बाध्य होना पड़ा। प्रारंभ में जिला बोर्डों और म्युनिसिपल बोर्डों की स्थापना की गई। सन् 1907 के विकेंद्रीकरण संबंधी शाही कमीशन ने पंचायतों के महत्त्व को स्वीकर किया और अपनी रिपोर्ट में लिखा कि किसी भी स्थायी संगठन की नींव, जिससे जनता का सक्रिय सहयोग प्रशासन के साथ हो, ग्रामों में ही होनी चाहिए। कमीशन ने सिफारिश की कि कुछ चुने हुए ग्रामों में, जो पारस्परिक दलबंदी और झगड़ों से मुक्त हों, पंचायतें स्थापित की जाएँ और प्रारंभ में उन्हें सीमित अधिकार दिए जाएँ। तत्कालीन भारत सरकार ने 1915 ई. में कमीशन की सिफारिशों को सिद्धांतत: तो स्वीकर कर लिया परंतु व्यवहार में उनकी पूर्णतया उपेक्षा की गई। बहुत ही कम ग्रामों में पंचायतें बनी; जो बनीं, वे भी सरकार द्वारा पूरी तरह नियंत्रित थी।

भारत सरकार के 1919 में अधिनियम के अनुसार प्रांतीय सरकारों को स्वशासन के कुछ अधिकार दिए गए और 1920 के आसपास सभी प्रांतों में ग्राम पंचायत अधिनियम बनाए गए। संयुक्त प्रदेश (उत्तर प्रदेश) में 1920 के पंचायत ऐक्ट के अधीन लगभग 4700 ग्राम पंचायतें स्थापित की गईं। सभी प्रांतों में पंचायतों को सीमित अधिकार दिए गए। वे जनस्वास्थ्य, स्वच्छता, चिकित्सा, जलविकास, सड़कों, तालाबों कुओं आदि की देखभाल करती थीं। उन्हें न्याय संबंधी कुछ अधिकार भी प्राप्त थे। वे अधिकतम 200 रु. की चल संपत्ति से संबद्ध मुकदमे ले सकती थीं और फौजदारी के मुकदमों में 50 रु. तक जुर्माना कर सकती थीं। इनकी आय का मुख्य साधन जुर्माना या दान था। परंतु वास्तविकता यह रही कि प्राचीन पंचायतों की तुलना में ये पंचायतें पूर्णतया प्रभावहीन थीं, इनके पंच जनता द्वारा न चुने जाकर सरकार द्वारा मनोनीत किए जाते थे तथा आय के साधन न होने के करण इनकी आर्थिक स्थिति शोचनीय थी। दूसरी ओर राष्ट्रीय आंदोलन के कर्णधार यह अनुभव करते थे कि गाँवों का आर्थिक

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

और नैतिक पतन केवल पंचायतों की पुन: स्थापना द्वारा ही रोका जा सकता है। गांधी जी के ग्रामों के लिए दससूत्री कार्यक्रम में पंचायतों को सुदृढ़ बनाने की बात मुख्य थी। वे पंचायतों को स्वंतत्र भारत की शासनव्यवस्था की आधारशिला बनाना चाहते थे। 1937 में सात प्रांतों में स्थापित कांग्रेसी सरकारों के सामने भी यही आदर्श था। उत्तर प्रदेश में अनेक ग्रामों में जीवनसुधार समितियाँ (Better Life Societies) बनाई गई जिन्हें ग्रामविकास के कार्य सौंपे गए।

## स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद :

इस प्रकार 1947 ई. तक ग्रामों में सही पंचायत व्यवस्था का अभाव ही रहा। स्वतंत्रताप्राप्ति के पश्चात् इस व्यवस्था को पुनर्जीवित करने के सक्रिय प्रयास आरंभ हुए। उत्तर प्रदेश में सन् 1947 में पंचायत राज अधिनियम बनाया गया। संविधान के अंतर्गत "राजनीति के निदेशक तत्वों" में राज्य का यह प्रमुख कर्तव्य बतलाया गया कि "वह ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए अग्रसर हो" तथा "उनको ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्रदान करे जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों"। इस निदेश के अनुसार प्रत्यक राज्य में पंचायत व्यवस्था लागू करने की दिशा में कदम उठाए गए और प्रत्येक ग्राम अथवा ग्रामसमूह में पंचायत की स्थापना की गई। पंचायत के सदस्यों का चुनाव गाँव के मताधिकारप्राप्त व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। ग्राम पंचायतें ग्राम की स्वच्छता, प्रकाश, सड़कों, औषधालयों, कुओं की सफाई और मरम्मत, सार्वजनिक भूमि, पैठ, बाजार तथा मेलों और चरागाहों की व्यवस्था करती हैं, जन्म मृत्यु का लेखा रखती हैं और खेती, उद्योग धंधों एवं व्यवसायों की उन्नति, बीमारियों की रोकथाम, श्मशानों और कब्रिस्तानों की देखभाल भी करती हैं। वृक्षारोपण, पशुवंश का विकास, ग्रामसुरक्षा के लिए ग्रामसेवक दल का गठन, सहकारिता का विकास, अकाल पीड़ितो की सहायता, पुलों और पुलियों का निर्माण, स्कूलों और अस्पतालों का सुधार आदि इनके ऐच्छिक कर्तव्य हैं। ग्रामों में पंचायत व्यवस्था का दूसरा अंग न्याय पंचायतें हैं। ग्रामों में मुकदमेबाजी कम करने तथा जनता को सस्ता न्याय सुलभ बनाने की दृष्टि से न्याय पंचायतों का निर्माण किया गया है। इन्हें दीवानी, फौजदारी और माल के मामलों में कुछ अधिकार प्रदान किए गए है। प्रत्येक राज्य में पंचायतों के अधिकार और दायित्व न्यूनाधिक रूप से समान है। विकेंद्रीकरण व्यवस्था को पूरी तरह कार्यान्वित करने की दिशा में और भी

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

कदम उठाए गए हैं। पंचायतों के अधिकारों और कर्तव्यों का क्षेत्र विस्तृत हो रहा है। इस प्रकार ग्राम पंचायतें पुन: हमारे देश के जनजीवन का अभिन्न अंग बन गई हैं। इस व्यवस्था की सफलता के लिए जनशिक्षा, सामूहिक चेतना, गुटबंदी का अभाव, राज्य द्वारा कम से कम हस्तक्षेप आदि बातें आवश्यक हैं।

## 1.1.4. परिवार, ग्राम और समाज- अंतर संबंध :

### परिचय एवं महत्व :

सभी समाजों में बच्चों का जन्म और पालन एवं पोषण परिवार में होता है। बच्चों का संस्कार करने और समाज के आचार,उच्चार और व्यवहार में उन्हें दीक्षित करने का काम मुख्य रूप से परिवार में होता है। इसके द्वारा समाज की सांस्कृतिक विरासत एक से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती है। व्यक्ति की सामाजिक मर्यादा बहुत कुछ परिवार से ही निर्धारित होती है। संसार के विभिन्न प्रदेशों और विभिन्न कालों में यद्यपि रचना, आकार, संबंध और कार्य की दृष्टि से परिवार के अनेक भेद हैं, किंतु उसके यह उपर्युक्त कार्य सार्वदेशिक और सार्वकालिक हैं। उसमें देश, काल, परिस्थिति और प्रथा आदि के भेद एक या अनेक पीढियों का और एक या अनेक दंपतियों अथवा पति-पत्नियों के समूहों का होना संभव है, उसके सदस्य एक पारिवारिक अनुशासन व्यवस्था के अतिरिक्त पति और पत्नी, भाई और बहन, पितामह और पौत्र, चाचा और भतीजे, सास और पुत्रवधू जैसे संबंधों तथा कर्तव्यों एवं अधिकारों से परस्पर आबद्ध, अन्य सामाजिक समूहों के संदर्भ में एक घनिष्टतम अंतरंग समूह के रूप में रहते हैं।

सामान्य तौर पर परिवार के दायरे में स्त्री और पुरुष के बीच कार्य विभाजन भी सार्वत्रिक और सार्वकालिक है। स्त्रियों का अधिकांश समय घर में व्यतीत होता है। भोजन बनाना, बच्चों की देख-रेख और घर की सफाई करना और कपड़ों की सिलाई आदि व्यवस्था, ऐसे काम हैं जो स्त्री के हिस्से में आते हैं। पुरुष बाहरी तथा अधिक श्रम के कार्य करता है, जैसे खेती, व्यापार, उद्योग, पशुचारण, शिकार और लड़ाई आदि। तब भी यह कार्यविभाजन सब समाजों में एक सा नहीं है, कोई बड़ी सामान्य सूची भी बनाना कठिन है, क्योंकि कई समाजों में स्त्रियाँ भी खेती और शिकार जैसे कामों में हिस्सा लेती है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

संसार में दांपत्य जीवन में प्राय: एकपत्नीत्व ही सबसे अधिक प्रचलित है, यद्यपि अनेक समाजों में पुरुषों को एक से अधिक पत्नियाँ रखने की भी छूट देखी जाती है। इसके विपरीत टोडा और खस जनजातियों में और तिब्बत के कुछ प्रदेशों में बहुपति प्रथा तथा एक प्रकार के यूथ विवाह की प्रथा है। इसी प्रकार भारत में खासी, गारो जैसी जनजातियाँ भी हैं जो मातृस्थानीय और मातृवंशीय हैं। विवाह के इन रूपों में परिवार की रचना और स्वरूप में अंतर पड़ जाता है।

## औद्योगिक क्रांति और परिवार :

आधुनिक औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप परिवार की रचना और कार्यों में गंभीर परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं। पहले सभी समाजों में परिवार समाज की सबसे महत्वपूर्ण और मौलिक संस्था थी। जीवन का अधिकांश व्यापार परिवार के माध्यम से संपन्न होता था। इन औद्योगिक समाजों में परिवार अब उत्पादन की इकाई नहीं है। बच्चों के शिक्षा का कार्य शिक्षण संस्थाओं ने लिया है। रसोई का कार्य व्यावसायिक भोजनालयों तथा जलपानगृहों में चला गया है। मनोरंजन के लिए पृथक् संगठन स्थापित हो गए हैं।

**सामाजिक सुरक्षा :** समाज मे अनेक प्रवृत्ति के लोग होने के कारण सुरक्षा इस विषय का प्रचलन हुआ।प्रारंभ मे अपनी अपनी पारिवारिक सुरक्षा देखी गई। फिर ग्राम सुरक्षा अस्तित्व मे आई। समाज बडा होता गया। विस्तारित समाज मे राज्यसत्ता का निर्माण अवश्यंभावी था। सुरक्षा का उत्तरदायित्व राज्य के पास चला गया।यह ही " राज्य " की आवश्यकता स्पष्ट करता है।

धर्म संकल्पना का विस्तार :

केवल परिवार के प्रती नही,समाज के प्रती भी कर्तव्यों का निर्वहन व्यक्ति के कंधो पर आया। सुरक्षा का कर्तव्य उसमें सबसे महत्वपूर्ण था। पति और पत्नी का अधिकांश समय आजकल घर के बाहर व्यतीत होता है । सामाजिक दायित्व भी निभाने के लिए विविध प्रकार की शिक्षा आवश्यक हुई। पूजा पाठ (व्यक्तिगत हो या सामूहिक)से लेकर देश के कारोबार तक की व्यवस्थाए चलाने का दायित्व व्यक्तिपर आगया। कर्तव्यों के निर्वहन का प्रचलन चल पडा। आदर्श प्रस्थापित होने लगे। वे ही संस्कृती के मानदंड बन गये।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

मर्यादा पुरुषोत्तम और कर्तव्यों के अग्रणी प्रभु रामचंद्र, आदर्श कृषि जीवनसहित सत्यासत्य के ज्ञाता और सुरक्षा के मार्गदाता श्रीकृष्ण, परचक्र निवारण के सेनानी विक्रमादित्य और शालीवाहन, घुसे हुए शत्रु को खदेडकर अपने संस्कृति का पुनर्प्रतिष्ठापना करनेवाले दक्षिण भारत के कृष्णदेवराय,शठं प्रती शाठ्यं तत्व के निर्माता छत्रपति शिवाजी, न हारते हुए जूझनेवाले गुरु गोविंदसिंह, अपना स्वातंत्र्य रक्षण करनेवाले पूर्वोत्तर के वीर लाचित बडफूकन.....ऐसे महापुरुषों की मालिका ने संस्कृती की गरिमा बढायी। व्यापक अर्थ से धर्म की रक्षा की।

## 1.1.5. राज्य और राष्ट्र का अंतर संबंध:

राष्ट्र बनाम राज्य: राष्ट्र और राज्य शब्द कभी-कभी पर्यायवाची के रूप में उपयोग किए जाते हैं। कभी-कभी, राज्य का प्रयोग राष्ट्र या देश के पर्यायवाची के रूप में किया जाता है, लेकिन राष्ट्र और राज्य की अपनी-अपनी पहचान होती है।

एक राष्ट्र जो, ऐसे लोगों के समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो इतिहास, रीति-रिवाजों, मूल्य, भाषा, संस्कृति, परंपरा, कला और धर्म के माध्यम से एक ही शरीर में बंधे होते हैं। इसके विपरीत, एक राज्य को एक संप्रभु सरकार के साथ भूमि के एक पैच के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। एक राष्ट्र को एक राजनीतिक-सांस्कृतिक इकाई के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसे उसके अद्वितीय चरित्र और सामूहिक अधिकारों से पहचाना जाता है। दूसरी ओर, एक राज्य को एक राजनीतिक-न्यायिक इकाई के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसे उसके संप्रभु अधिकारों द्वारा पहचाना जाता है।

व्युत्पत्ति को देखते हुए, पाश्चिमात्य देशों मे, 'राष्ट्र' लैटिन शब्द 'नाटियो' से लिया गया है, जिसका अर्थ है 'लोगों का समूह'। राज्य एक शब्द है जो लैटिन के 'स्टेटस' से लिया गया है, जिसका अर्थ है 'स्टेटस' या 'हालत'। खैर, राज्य मिलकर एक राष्ट्र बनाते हैं। हालांकि, एक राष्ट्र के भीतर एक राज्य की एक अलग राजनीतिक इकाई भी हो सकती है। हालांकि राज्यों के अपने नियम हैं, और वे नए कानून भी ला सकते हैं, उन्हें राष्ट्रीय कानूनों का पालन करना चाहिए। साधारणतया राज्य ऐसे कानून नहीं बना सकते जो राष्ट्र के हित में न हों।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

एक राष्ट्र को संप्रभुता के धारक के रूप में संदर्भित किया जा सकता है, जिसकी किसी राज्य के मूलभूत मानदंडों को विकसित करने में एक बड़ी भूमिका होती है। अगर राज्य अनेक है तो,एक राष्ट्र का एक संविधान होगा, जबकि एक राज्य का एक अलग संविधान नहीं होगा।

राष्ट्रीय हित से संबंधित नीतियां राष्ट्रीय स्तर पर सरकार द्वारा ली जाती हैं, लेकिन राज्य सरकारें ऐसी नीतियां नहीं बना सकती हैं।

## सारांश

1. एक राज्य को कभी-कभी राष्ट्र या देश के पर्यायवाची के रूप में प्रयोग किया जाता है।
2. राज्य मिलकर एक राष्ट्र बनाते हैं।
3. एक राष्ट्र को एक राजनीतिक-सांस्कृतिक इकाई के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसकी पहचान उसके अद्वितीय चरित्र और सामूहिक अधिकारों से होती है। इसके विपरीत, एक राज्य को एक राजनीतिक-न्यायिक इकाई के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसे उसके संप्रभु अधिकारों द्वारा पहचाना जाता है।
4. एक राष्ट्र को इतिहास, रीति-रिवाजों, मूल्य, भाषा, संस्कृति, परंपरा, कला और धर्म के माध्यम से एक ही शरीर में बंधे लोगों के समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। एक राज्य को एक संप्रभु सरकार के साथ साथ भूमि के एक पैच के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।
5. एक राष्ट्र को संप्रभुता के धारक के रूप में संदर्भित किया जा सकता है।
6. राष्ट्रीय स्तर पर सरकार द्वारा राष्ट्रीय हित से संबंधित नीतियां ली जाती हैं, लेकिन राज्य सरकारें ऐसी नीतियां नहीं बना सकती हैं।
7. हिंदुस्तान मे 'राष्ट्र' शब्द प्राचीन है,लेकिन पश्चिम मे वह लैटिन 'नाटियो' से लिया गया है, जिसका अर्थ है 'लोगों का समूह'। राज्य एक शब्द है जो लैटिन 'स्टेटस' से लिया गया है, जिसका अर्थ है 'स्टेटस' या 'हालत'।

**अवधारणात्मक शब्दों का अर्थ (Meaning of Conceptual terms)**

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

- समाज - एक ही प्रकार के व्यक्तियों के समूह को, जिसका हर घटक समान पद्धति से जन्म लेता है, उसे समाज कहते हैं।
- राष्ट्र - राष्ट्र की परिभाषा, "एक ऐसे जन समूह के रूप में की जा सकती है जो कि एक भौगोलिक सीमाओं में एक निश्चित देश में रहता हो, समान परम्परा, समान हितों तथा समान भावनाओं से बँधा हो और जिसमें एकता के सूत्र में बाँधने की उत्सुकता तथा समान राजनैतिक, सामाजिक महत्त्वाकांक्षाएँ पाई जाती हों।"
- राज्य - राज्य उस संगठित इकाई को कहते हैं, जो एक शासन (सरकार) के अधीन हो। राज्य संप्रभुता सम्पन्न हो सकते हैं। इसके अलावा किसी शासकीय इकाई या उसके किसी प्रभाग को भी 'राज्य' कहते हैं, जैसे भारत के प्रदेशों को भी 'राज्य' कहते हैं।

## स्व–मूल्यांकन (Self-Assesment)

- **दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long answer type questions)**

1. भारतीय संस्कृति को परिभाषित कर इसकी विशेषताएं लिखिए।
2. राष्ट्र और राज्य की अवधारणा में विभेद कीजिए।
3. प्राचीन पंचायत व्यवस्था पर प्रकाश डालिये।
4. भारतीय समाज की प्रमुख विशेषताओं को लिखिए।
5. व्यक्ति, परिवार और ग्राम के अंर्तसम्बन्धों को स्पष्ट कीजिए।

- **लघु उत्तरीय प्रश्न (Short answer type questions)**
    1. समाज क्या हैं?
    2. परम्पराओं को परिभाषित कीजिए।
    3. वर्ण व्यवस्था क्या हैं?
    4. भारतीय समाज के प्रमुख अंर्तविरोध क्या हैं?
    5. ग्राम को परिभाषित कीजिए।

- **अति लघुउत्तरीय / वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Very short/ Objective type questions)**
    1. व्यक्ति क्या हैं?
    2. संविधान की दो विशेषताएं लिखिए।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

3. भारतीय समाज की दो विशेषताएं लिखिए।
4. आधुनिक भारतीय समाज की दो चुनौतियां लिखिए।
5. ज्ञान आधारित समाज क्या हैं?

## प्रदत्त कार्य (Assignment)

- चयनित गांव में जाना। सर्वेक्षण करना। ग्रामस्थों की बैठकर लेकर आपने पाठ्यक्रम के बारे में समझाना। बताना।
- कोई एक कार्यक्रम लेना। जैसे– उपलब्ध मंदिर की स्वच्छता, सामूहिक सब लोगों के साथ, सम्मिलित आरती, भंडारा में सम्मिलित होना।
- किसी एक अच्छी परम्परा पर निबंध लिखना (उसी गांव से)।

## संदर्भ (References)

1. संस्कृति के चार अध्याय लें – रामधारी सिंह दिनकर
2. धर्मशास्त्र का इतिहास, ले. पां. वा. कागे
3. भारतीय संस्कृति के प्रतीक – ले – साने गुरुजी
4. कोलंम्बो से अलमोडा तक – ले. स्वामी विवेकानंद
5. शूद्र पहले कौन थे? – ले. डॉ. बाबासाहब आंबेडकर
6. वेदों में राष्ट्र दर्शन – ले. बाबासाहबे आपटे

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

## इकाई– 2 परस्पर पूरकता, पारस्परिक निर्भरता समाज की प्रकात्मकता

**उद्देश्य :–**

इस इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे कि

- भारत ग्राम में जीवनयापन कैसे चलता था?
- समाज में आपस में व्यवहार कैसे होता था।
- किस तत्व ज्ञान के आधार पर समाज बांधा जा सकता है। उसके लिए परम्पराएं बन गयी। आज भी विद्यमान हैं।
- एकात्मता साधना लक्ष्य है।

## 1.2.1. पराम्परिक व्यवसायों की पूरकता और निर्भरता

प्राचीन समय से गांवों में एक ऐसी सुचारु व्यवस्था अस्तित्व में रही है जिससे गांव की आर्थिक गतिविधियां बाहरी कारकों पर निर्भर न होकर परस्पर समाज में हो रहे विभिन्न कार्यों से अंतरसंबंधित रही हैं। हालांकि बदले हालातों में इसमें भी बदलाव साफ दिखाई देता है। फिर भी अनेक ऐसी आर्थिक गतिविधियां हैं, जिनमें एक प्रक्रम का उपयोग दूसरे प्रक्रम में किया जा रहा है।

### पशु पालन-

पशु पालन ग्रामीण समाज की महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि सदियों से रही है। यद्यपि पशुओं का उपयोग अब कृषि कार्यों में बेहद सीमित है। लेकिन दूध प्रसंस्करण के उद्योग अब ग्रामीण क्षेत्रों में खुल जाने से ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादित दूध का उपयोग स्थानीय स्तर पर कई गांवों का एक संकुल बना कर किया जाना सम्भव हुआ है। इस तरह से दूध प्रसंस्करण कुटीर उद्योग और दूध उत्पादित करने वाले किसानो, दोनों की पूरकता और निर्भरता निरंतर विकसित होती जा रही है। ग्रामीण क्षेत्रों को नगरीय क्षेत्रों से जोडऩे के लिए वर्तमान सरकार द्वारा बनाई गईं बेहतर सडक़ों से इस उत्पादन को नगरीय क्षेत्रों तक सप्लाई करना सुलभ हुआ है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

उदाहरण के तौर पर:

1. मृत पशुओं से जो चमडी निकलती है,उससे पादत्राण याने चप्पल , ज्युते तयार होते हैं। चमडी स्थानिक स्तर पर उपलब्ध होने के कारण पादत्राण सस्ते दाम मे मिलना संभव होता है। वस्तुओं का वाहनों से लाना लिजाना अपरिहार्य नही रहता था। हर एक व्यक्ति के नाम तौल का पादत्राण बनता था।
2. फल फूल, सब्जियाँ आदि कृषि उत्पादनों की खरीद,बिक्री भी उसी ग्राम में या नजदीकी साप्ताहिकी बाजारो मे बेचना सहज था। ब्यापारी लोगों को सुविधा होती थी। लोगों को सस्ता माल मिलना संभव था।
3. सुतार, सुनार, नाई,दर्जी,बुनकर,लुहार,बढई आदि कृषि योग्य, मानव जीवन योग्य व्यवसाय ग्राम मे ही पलते फूलते थे।भौतिक आवश्यकता वहीं पूरी होती थी। जीवन आवश्यक साहित्य ग्राम मे ही उपलब्ध होता था।
4. कोतवाली ग्राम मे ही होती थी। कोतवाल स्थानीय ही होता था।
5. अनजान पांथस्थ, अतिथि की व्यवस्था,बारी बारी से किसी एक के घर या मुखिया के घर होतो थी। मंदिरों का भी उपयोग पांथस्थो के लिए करते थे। इस तरह आत्म निर्भरता,पूरकता पाली जाती थी।

## एकात्मता :

इस तरह ग्राम मे जिसकी जो जरूरत हो, वह तो पूरी तो होती ही थी, साथ साथ दूसरों को सहायता करना भी कर्तव्य माना जाता था।धर्मो धारयती प्रजाः यही व्याख्या थी धर्म की। इसी को धर्म माना गया। मानो, ग्राम एक परिवार था। इस तरह आपस मे व्यवहार होने के कारण एकात्मता बनी रहती थी।

सदियों तक इसी एकात्मता के कारण पूरा भारतवर्ष भारतमाता बन गया। हम भारतवासी भाई बहन बन गये। सब का सुख दुख सब का हो गया। इस बंधुभाव को ही समरसता नाम पडा। अपना देश भारतमाता बन गया। उस भारतमाता का दर्शन

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

लेने के उद्देश्य से आयोजित , छोटे छोटे मेलों से लेकर लम्बी तीर्थ यात्राए, हिंदुस्तान की विशेषता रही। अभ्युदय और नि:श्रेयस की पूर्तता होती थी।

## 1.2.2. ग्राम समाज जीवन में पूरकता के माध्यम:

ग्राम समाज जीवन में पूरकता के माध्यम निम्नप्रकार है। खानपान, वस्त्र, व्यवहार मेले, उपास्य देवी देवता, मठ मंदिर, तत्वज्ञान, परम्परा ।

वस्तुओं की लेन देन:यह वैशिष्ट्यपूर्ण पहलू है। कृषिजीवन मे कृषि व्यवसाय प्रधान है। इस व्यवसाय मे विविध साधनों की आवश्यकता होती है।हल चलाने से लेकर, बुआई के साधन, फसल काटने के साधन तक। सभी साधन किसान के पास होना आवश्यक होते हुए भी कुछ साधन कम होते हैं। दूसरे किसान के पास जो नही है,वह देकर ,हमे चाहिए वह लेने पडते है। कभी कभी बैलों की भी लेन देन करने पडती है।

बुआई के समय बीज से लेकर कृषि उत्पादन बझार ले जाने के लिए वाहन तक सभी चीजों की लेन देन करनी पडती है।

छोटी छोटी दुकाने जीवनावश्यक वस्तुए बेचती है। जब किसानों के पास पैसा नही रहता है, तो उधार माल यह दुकानदार देता है।अनाज के रूप में भी पैसा दिया जाता था। या फिर फसल निकलने के बाद ही पैसों का व्यवहार संभव होता है।

खेती मे काम करने के लिए मजदूर नही मिलते। एक दूसरों के खेत मे काम के लिए भी जाना पडता है।

ऐसे कई माध्यमों से परस्पर पूरकता पनपती है।

## 1.2.3. खान-पान

स्वयंपूर्ण याने आत्मनिर्भर ग्रामीण क्षेत्रों मे भोजन ,घर में हो या खेत में,एकत्र बैठकर करते है। जितना भी पकाया गया है, सभी लोग बांटकर खाते है। पडोसी को कच्ची पक्की साग सब्जी भेजने का भी रिवाज है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

कुप्रथा के कारण जिन लोगों कों दूर रखा गया है,उनको भी कृषि उत्पाद देते है। घर में जो भी पकाया जाता है,उसमे पालतू प्राणियों का भी हिस्सा होता है। सूखा बासा क्यों न सही, उन्हे जरूर खिलाया जाता है।गाय को तो माता मानते है। कईं घरों मे हर दिन "गो ग्रास" अर्पण किये बगैर घर में कोई भी भोजन नही करता। विशेष अवसरोंपर पूरा ग्राम सहभोज लेता है। सगे संबंधियों को दावत भी देते हैं। जैसे की: 1. विवाह, व्रतबंध 2 .श्राद्ध,बरसी 3.कथा, कीर्तन समाप्ती 4. पुण्य तिथीयाॅ (स्मरण दिन) 5. कुछ त्योहार 6. किसी ग्राम देवता का उत्सव.

खानपान में उसी ग्राम में उपजी हुई सब्जियाँ प्रयोग मे लाते है। हर ग्राम मे बहुत सब्जियाँ उगती है। ग्राम : बारीपाडा , तहसील: साक्री, जिला. धुलिया, महाराष्ट्र. में "वनवासी कल्याण आश्रम" द्वारा "बनसब्जी" महोत्सव प्रतिवर्ष होता है। कुल मिला के 25 नई सब्जियाँ ढूंढी गई है।

## 1.2.4. वस्त्र :

ग्रामीण क्षेत्रों मे अक्सर पुरूषों के वस्त्र समान होते है, उसी प्रकार महिलाओं के भी। युवा, बालक, बूढों का ढंग भी आयु के अनुसार समान होता है। दीपावली जैसे त्योहारों मे वस्त्र नए सिलाने का रिवाज भी है। यह समानता एकात्मता की ओर लिजाती है। भारतीय परम्परा के अनुसार आमतौरपर शादियों मे समंधी एक दूसरे को वस्त्रों से सम्मानित करते है। ग्रामीण क्षेत्रो मे तो अवश्य वस्त्रों का ही प्रयोग होता है।

दर्जियों के घर पूरे गांव को परिचित होते है। दर्जी भी पूरे गांव को जानता है। इसलिए आपस मे स्नेह भी होता है। केवल व्यापारी संबंध (बिझिनेस डील) नही होता है। बुनकर लोगों की बुनाई से गांव को तो सहायता होती ही है, साथ साथ आजूबाजू के गांवों को भी व्यापार से जोडती है। विशेष मशहूर हुआ तो देश विदेशो में भी कपडा जाने से, गांव प्रसिद्ध होता है। उस बहाने गांव की बाकी आमदनी भी बढती है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

स्वाभाविक ही है,दर्जी की भौतिक जरूरतें अपनी आप गांव की ओर से पूरी होती है।इस पूरकता के कारण दीर्घ अवधी मे परम्परा भी बनती है।

## 1.2.5. व्यवहार मेले

मेलों में भारतीय संस्कृति की झलक पाई जाती है। इन मेलों में सामाजिकता, संस्कृति आदि का अद्‌वितीय सम्मिलन होता है।हर प्रांत मे अलग अलग तरह के ,अलग अलग कारणों से,अलग अलग जगहोंपर मेले लगे हैं। इन मेलों को ग्रामस्थ जरूर एकत्रित होकर जाते हैं। इकठ्ठा आना जाना, मेलों मे साथ साथ सम्मिलित होकर आनंद लेना, इससे एकात्मता बढती है।

मध्यप्रदेश में 1,400 स्थानों पर मेले लगते हैं। उज्जैन जिले में सर्वाधिक 227 मेले और होशंगाबाद जिले में न्यूनतम 13 मेले आयोजित होते हैं। मार्च, अप्रैल और मई में सबसे ज्यादा मेले लगते हैं, इसका कारण ये हो सकता है कि इस समय किसानों के पास कम काम होता है। जून, जुलाई, अगस्त और सितंबर में नहीं के बराबर मेले लगते हैं। इस समय किसान सबसे अधिक व्यस्त होते हैं और बारिश का मौसम भी होता है। मध्यप्रदेश के मुख्य मेले निम्नानुसार हैं-

### सिंहस्थ-कुंभ-

यह पवित्रतम मेला माना जाता है। इस मेले में लोगों की अत्यंत श्रद्‌धा रहती है। मध्यप्रदेश का उज्जैन एकमात्र स्थान है, जहां कुंभ का मेला लगता है। विशेष ग्रह स्थितियों के अनुसार कुंभ मेला लगता है। यह ग्रह स्थिति प्रत्येक बारह साल में एकबार आती है। इसलिए उज्जैन में लगने वाले कुंभ को " सिंहस्थ " कहा जाता है।

रामलीला का मेला-ग्वालियर जिले की भांडेर तहसील में यह मेला लगता है। 100 वर्षों से अधिक समय से चला आ रहा यह मेला जनवरी-फरवरी माह में लगता है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

पीर बुधान का मेला-शिवपुरी के सांवरा क्षेत्र में यह मेला 250 सालों से लग रहा है। मुस्लिम संत पीर बुधन का यहाँ मकबरा है। अगस्त-सितंबर में यह मेला लगता है।

नागाजी का मेला-अकबर कालीन संत नागाजी की स्मृति में यह मेला लगता है। मुरैना जिले के पोरसा गांव में एक माह तक मेला चलता है। पहले यहाँ बंदर बेचे जाते थे। अब सभी पालतू जानवर बेचे जाते हैं।

हीरा भूमिया मेला-हीरामन बाबा का नाम ग्वालियर और इसके आस-पास के क्षेत्रों में प्रसिद्ध है। यह कहा जाता है कि हीरामन बाबा के आशीर्वाद से महिलाओं का बांझपन दूर होता है। कई सौ वर्षों पुराना यह मेला अगस्त और सिंतबर में आयोजित किया जाता है।

तेताजी का मेला-तेताजी सच्चे इंसान थे। कहा जाता है कि उनके पास एक ऐसी शक्ति थी जो शरीर से सांप का जहर उतार देती थी। गुना जिले के भामावड़ में पिछले 70 वर्षों से यह मेला लगता चला आ रहा है। तेताजी की जयंती पर यह मेला आयोजित होता है। निमाड़ जिले में भी इस मेले का आयोजन होता है।

जागेश्वरी देवी का मेला-हजारों सालों से अशोकनगर जिले के चंदेरी नामक स्थान में यह मेला लगता चला आ रहा है। कहा जाता है कि चंदेरी के शासक जागेश्वरी देवी के भक्त थे। वे कोढ़ से पीड़ित थे। किंवदंती के अनुसार देवी ने राजा से कहा था कि वे 15 दिन बाद देवी स्थान पर आए किंतु देवी का सिर्फ मस्तक ही दिखाई देना शुरू हुआ था। राजा का कोढ़ ठीक हो गया और उसी दिन से उस स्थान पर मेला लगना शुरू हो गया।

महामृत्यंजना का मेला-रीवा जिले में किला परिसर में महामृत्यंजना का मंदिर स्थित है जहाँ बसंत पंचमी और शिवरात्रि को मेला लगता है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

अमरकंटक का शिवरात्रि मेला-शहडोल जिले के अमरकंटक नामक स्थान (नर्मदा के उद्गम स्थल) में यह मेला लगता है। 80 वर्षों से चला आ रहा यह मेला शिवरात्रि को लगता है।

चंडी देवी का मेला-सीधी जिले के धीधरा नामक स्थान पर चंडी देवी को सरस्वती का अवतार माना जाता है। यहाँ पर मार्च-अप्रैल में मेला लगता है।

काना बाबा का मेला-हरदा जिले के सोढलपुर नामक गांव में काना बाबा की समाधि पर यह मेला लगता है।

कालूजी महाराज का मेला-पश्चिमी निमाड़ के पिपल्या खुर्द में एक महीने तक यह मेला लगता है। यह कहा जाता है कि 200 वर्षों पूर्व कालूजी महाराज यहाँ पर अपनी शक्ति से आदमियों और जनवरों की बीमारी ठीक करते थे।

धमोनी उर्स-सागर जिले के धमोनी नामक स्थान पर बाबा मस्तान अली शाह की मजार पर अप्रैल-मई में यह उर्स लगता है।

शहाबुद्दीन औलिया का उर्स-मंदसौर जिले के नीमच नामक स्थान पर फरवरी माह में आयोजित किया जाता है। ये सिर्फ चार दिनों तक चलता है। यहां बाबा शहाबुद्दीन की मजार है।

मठ घोघरा का मेला-सिवनी जिले के मौरंथन नामक स्थान पर शिवरात्रि को 15 दिवसीय मेला लगता है। यहाँ पर प्राकृतिक झील और गुफा भी है।

सिंगाजी का मेला-सिंगाजी एक महान संत थे। पश्चिमी निमाड़ के पिपल्या गांव में अगस्त-सितंबर में एक सप्ताह को मेला लगता है।

बरमान का मेला-नरसिंहपुर जिले के सुप्रसिद्ध ब्राह्मण घाट पर मकर संक्रांति पर 13 दिवसीय मेला लगता है। यहां अपार भीड़ एकत्रित होकर स्नान कर पुण्य लाभ अर्जित करती है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

कलेहन का मेला-पन्ना जिले के पवई नामक स्थान (कलेहन) में माँ कलेही(काली) के मंदिर के समीप यह मेला लगता है। यहां पर मां की अद्भुत प्रतिमा है जो लेटी हुई अवस्था में है।

अन्य अवर्गीकृत देशभर के कुछ प्रसिद्ध मेले हैं-

- बानेश्वर का मेला, उत्तर प्रदेश
- कुंभ मेला, प्रयागराज
- माघ मेला, प्रयागराज
- मार्गशीर्ष मेला, सोरों शूकरक्षेत्र
- नौचन्दी मेला,
- खिचड़ी मेला, गोरखपुर
- बटेश्वर मेला, आगरा
- कतिकी मेला, बिठूर
- उत्तरायणी मेला, बरेली
- दादरी मेला, बलिया
- शहीद मेला, बेवर (मैनपुरी)
- हरियाणा
- सूरजकुण्ड मेला,
- कपाल मोचन मेला, यमुनानगर
- सूर्यग्रहण मेला, कुरुक्षेत्र
- भीमेश्वरी देवी मेला, झज्जर
- गंगासागर मेला
- कोट की माई का मेला
- गोगामेडी मेला

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

- रामायण मेला
- शरद पूर्णिमा मेला, पुनरासर धाम
- कालका माता का मेला, देसूरी
- नानकमत्ता साहब का दीपावली मेला
- उत्तराखंड
- कुंभ मेला, हरिद्वार
- नन्दादेवी मेला, अल्मोड़ा
- नन्दादेवी मेला, नैनीताल
- बग्वाल मेला (उत्तराखण्ड)
- उत्तरायणी मेला, बागेश्वर तथा हल्द्वानी
- हरेला मेला, भीमताल
- कांवर मेला, काशीपुर
- चैती मेला, काशीपुर
- माघ मेला, उत्तरकाशी

भारत में मेलों के आयोजन की अद्भुत संस्कृति वर्षों से रही है। कालांतर में आद्योगिक क्रांति और गांव कस्बों के नगर में तब्दील होने के कारण बाजार, मॉल के रूप में अपने पैर पसारते गए और हर दिन मेले की तरह बाजार ने स्वरूप धारण कर लिया। हालांकि धार्मिक मेलों के आयोजन आज भी होते हैं क्योंकि इनका स्थान बाजार नहीं ले सकता।

## 1.2.7. मठ मंदिर:

मठ वह स्थान है जहां किसी सम्प्रदाय, धर्म या परंपरा विशेष में आस्था रखने वाले शिष्य आचार्य या धर्मगुरु अपने सम्प्रदाय के संरक्षण और संवर्धन के उद्देश्य से धर्म

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

ग्रन्थों पर विचार विमर्श करते हैं या उनकी व्याख्या करते हैं, जिससे उस सम्प्रदाय के मानने वालों का हित हो और उन्हें पता चल सके कि उनके धर्म में क्या है। उदाहरण के लिए बौद्ध विहारों की तुलना हिन्दू मठों या ईसाई मोनेस्ट्रीज़ से की जा सकती है। लेकिन मठ शब्द का प्रयोग शंकराचार्य के काल यानी सातवीं या आठवीं शताब्दी से शुरु हुआ माना जाता है।

## मठ का आशय:

मठ का अर्थ ऐसे संस्थानों से है जहां इसके गुरू अपने शिष्यों को शिक्षा, उपदेश इत्यादि प्रदान करता है। ये गुरु प्राय: धर्म गुरु होते है इनके द्वारा दी गई शिक्षा मुख्यत: आध्यात्मिक होती है पर ऐसा हमेशा नहीं होता। एक मठ में इन कार्यों के अतिरिक्त सामाजिक सेवा, साहित्य इत्यादि से सम्बन्धित कार्य भी होते हैं। मठ एक ऐसा शब्द है जिसके बहुधार्मिक अर्थ हैं। बौद्ध मठों को विहार कहते है। ईसाई धर्म में इन्हें मॉनेेस्ट्री, प्रायरी, चार्टरहाउस, एब्बे इत्यादि नामों से जाना जाता है।

शंकराचार्य के चार मठ:

हिंदू धर्म का संत समाज शंकराचार्य द्वारा नियुक्त चार मठों के अधीन है। हिंदू धर्म की एकजुटता और व्यवस्था के लिए चार मठों की परंपरा को जानना आवश्यक है। चार मठों से ही गुरु-शिष्य परम्परा का निर्वाह होता है।

आदिशंकराचार्यजी ने जो चारपीठ स्थापित किये,साधारण काल निर्धारण इस प्रकार है।

1. उत्तर दिशा में बदरिकाश्रम में ज्योतिर्पीठ स्थापना- युधिष्ठिर संवत् 2641
2. पश्चिम में द्वारिकाशारदा पीठ- यु.सं.2648
3. दक्षिण शृंगेरीपीठ- यु.सं. 2648
4. पूर्व दिशा जगन्नाथपुरीगोवर्द्धन पीठ - यु.सं. 2655

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

शंकराचार्य जी ने इन मठों की स्थापना के साथ-साथ उनके मठाधीशों की भी नियुक्ति की, जो बाद में स्वयं शंकराचार्य कहे जाते हैं। जो व्यक्ति किसी भी मठ के अंतर्गत संन्यास लेता हैं वह दसनामी संप्रदाय में से किसी एक सम्प्रदाय पद्धति की साधना करता है। ये चार मठ निम्न हैं-

श्रृंगेरी मठ: श्रृंगेरी मठ भारत के दक्षिण क्षेत्र कर्नाटक में चिकमंगलुरु में स्थित है। श्रृंगेरी मठ के अन्तर्गत दीक्षा प्राप्त करने वाले संन्यासियों के नाम के बाद सरस्वती, भारती तथा पुरी सम्प्रदाय नाम विशेषण लगाया जाता है जिससे उन्हें उक्त संप्रदाय का संन्यासी माना जाता है। इस मठ का महावाक्य "अहं ब्रह्मास्मि " है तथा मठ के अन्तर्गत यजुर्वेद को रखा गया है। इस मठ के प्रथम मठाधीश आचार्य सुरेश्वरजी थे, जिनका पूर्व में नाम मण्डन मिश्र था। वर्तमान में स्वामी भारती कृष्णतीर्थ इसके 36 वें मठाधीश हैं।

गोवर्धन मठ: गोवर्धन मठ भारत के पूर्वी भाग में ओडिशा राज्य के जगन्नाथ पुरी में स्थित है। गोवर्धन मठ के अंतर्गत दीक्षा प्राप्त करने वाले सन्यासियों के नाम के बाद वन व आरण्य सम्प्रदाय नाम विशेषण लगाया जाता है जिससे उन्हें उक्त संप्रदाय का संन्यासी माना जाता है। इस मठ का महावाक्य है, " प्रज्ञानं ब्रह्म " , तथा इस मठ के अंतर्गत ऋग्वेद को रखा गया है। इस मठ के प्रथम मठाधीश आदि शंकराचार्य के प्रथम शिष्य पद्मपादचार्य हुए। वर्तमान में निश्चलानन्द सरस्वती इस मठ के 145 वें मठाधीश हैं।

शारदा मठ: शारदा (कालिका) मठ गुजरात में द्वारकाधाम में स्थित है। शारदा मठ के अंतर्गत दीक्षा प्राप्त करने वाले सन्यासियों के नाम के बाद तीर्थ और आश्रम सम्प्रदाय नाम विशेषण लगाया जाता है जिससे उन्हें उक्त संप्रदाय का संन्यासी माना जाता है। इस मठ का महावाक्य है," तत्त्वमसि " तथा इसके अंतर्गत सामवेद को रखा गया है। शारदा मठ के प्रथम मठाधीश हस्तामलक (पृथ्वीधर) थे। हस्तामलक शंकराचार्य जी के

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

प्रमुख चार शिष्यों में से एक थे। हस्तामलक आदि शंकराचार्य के प्रमुख चार शिष्यों में से एक थे। वर्तमान में स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती इसके 79 वें मठाधीश हैं।

## ज्योतिर्मठ:

उत्तरांचल के बद्रीनाथ में स्थित है ज्योतिर्मठ। ज्योतिर्मठ के अंतर्गत दीक्षा प्राप्त करने वाले संन्यासियों के नाम के बाद गिरि, पर्वत एवं 'सागर' सम्प्रदाय नाम विशेषण लगाया जाता है , जिससे उन्हें उक्त संप्रदाय का संन्यासी माना जाता है। इस मठ का महावाक्य "अयमात्मा ब्रह्म है "। इस मठ के अंतर्गत अथर्ववेद को रखा गया है। ज्योतिर्मठ के प्रथम मठाधीश त्रोटकाचार्य बनाए गए थे।वर्तमान में स्वामी स्वरूपानंद सरस्वती जी इसके 44 वें मठाधीश हैं।

उक्त मठों तथा इनके अधीन उपमठों के अंतर्गत संन्यस्त संतों को गुरु बनाना या उनसे दीक्षा लेना ही हिंदू धर्म के अंतर्गत माना जाता है। यही हिंदुओं की संत धारा मानी गई है।

## मन्दिर:

भारतीय धर्मों (सनातन/वैदिक धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, सिख धर्म आदि) याने की हिन्दुओं के उपासनास्थल को मन्दिर या विहार कहते हैं। यह आराधना,ध्यान और पूजा-अर्चना के लिए निश्चित की हुई जगह या देवस्थान है। यानी जिस जगह किसी आराध्य के प्रती या किसी देव के प्रति ध्यान या चिंतन किया जाए। या वहां मूर्ति इत्यादि रखकर पूजा-अर्चना की जाए उसे मन्दिर कहते हैं। मन्दिर का शाब्दिक अर्थ घर है। वस्तुत: सही शब्द देवमन्दिर, शिवमन्दिर, कालीमन्दिर आदि हैं। तमिल भाषा में मन्दिर को कोईल या कोविल कहते हैं।

मंदिरों की निर्माण: गुप्तकाल (चौथी से छठी शताब्दी) में मन्दिरों के निर्माण का उत्तरोत्तर विकास दृष्टिगोचर होता है। पहले लकड़ी के मन्दिर बनते थे या बनते होंगे, लेकिन जल्दी ही भारत के अनेक स्थानों पर पत्थर और इटों से मन्दिर बनने लगे। 7

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

वीं शताब्दि तक देश के उत्तरी क्षेत्रो में पत्थरों से मंदिरों का निर्माण होना पाया गया है। चौथी से छठी शताब्दी में गुप्तकाल में मन्दिरों का निर्माण बहुत द्रुत गति से हुआ। मूल रूप से हिन्दू मन्दिरों की शैली बौद्ध मन्दिरों से ली गयी होगी ।जैसा कि उस समय के पुराने मन्दिरो में मूर्तियों को मन्दिर के मध्य में रखा होना पाया गया है और जिनमें बौद्ध स्तूपों की भांति परिक्रमा मार्ग हुआ करता था। गुप्तकालीन बचे हुए लगभग सभी मन्दिर अपेक्षाकृत छोटे हैं जिनमें काफी मोटा और मजबूत कारीगरी किया हुआ एक छोटा केन्द्रीय कक्ष है, जो या तो मुख्य द्वार पर या भवन के चारों ओर बरामदे से युक्त है। गुप्तकालीन आरम्भिक मन्दिर, उदाहरणार्थ सांची के बौद्ध मन्दिरों की छत सपाट है; तथापि मन्दिरों की उत्तर भारतीय शिखर शैली भी इस काल में ही विकसित हुयी और शनै: शनै: इस शिखर की ऊंचाई बढ़ती रही। 7वीं शताब्दी में बोध गया में निर्मित बौद्ध मन्दिर की बनावट और ऊंचा शिखर गुप्तकालीन भवन निर्माण शैली के चरमोत्कर्ष का प्रतिनिधित्व करता है।
बौद्ध और जैन पंथियों द्वारा धार्मिक उद्देश्यों के निमित्त कृत्रिम गुफाओं का प्रयोग किया जाता था और हिन्दू धर्मावलंबियों द्वारा भी इसे आत्मसात कर लिया गया था। फिर भी हिन्दुओं द्वारा गुफाओं में निर्मित मंदिर तुलनात्मक रूप से बहुत कम हैं और गुप्तकाल से पूर्व का तो कोई भी साक्ष्य इस संबन्ध में नहीं पाया जाता है। गुफा मन्दिरों और शिलाओं को काटकर बनाये गये मन्दिरों के संबंध में अधिकतम जानकारी जुटाने का प्रयास करते हुए हम जितने स्थानों का पता लगा सके वो पृथक सूची में सलंग्न की है। मद्रास (वर्तमान चेन्नई) के दक्षिण में पल्लवों के स्थान महाबलिपुरम् में, 7वीं शताब्दी में निर्मित अनेक छोटे मन्दिर हैं, जो चट्टानों को काटकर बनाये गये हैं और जो तमिल क्षेत्र में तत्कालीन धार्मिक भवनों का प्रतिनिधित्व करते हैं।
मन्दिरों का अस्तित्व और उनकी भव्यता गुप्त राजवंश के समय से देखने को मिलती है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि गुप्त काल से हिन्दू मंदिरों का महत्व और उनके आकार में उल्लेखनीय विस्तार हुआ तथा उनकी बनावट पर स्थानीय वास्तुकला

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

का विशेष प्रभाव पड़ा। उत्तरी भारत में हिन्दू मंदिरों की उत्कृष्टता उड़ीसा तथा उत्तरी मध्यप्रदेश के खजुराहो में देखने को मिलती है। उड़ीसा के भुवनेश्वर में स्थित लगभग 1000 वर्ष पुराना लिंगराजा का मन्दिर वास्तुकला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। हालांकि, 13वीं शताब्दी में निर्मित कोणार्क का सूर्य मंदिर इस क्षेत्र का सबसे बड़ा और विश्वविख्यात मंदिर है। इसका शिखर इसके आरंम्भिक दिनों में ही टूट गया था और आज केवल प्रार्थना स्थल ही शेष बचा है। काल और वास्तु के दृष्टिकोण से खजुराहो के सर्वाधिक महत्वपूर्ण मन्दिर 11वीं शताब्दी में बनाये गये थे। गुजरात और राजस्थान में भी वास्तु के स्वतन्त्र शैली वाले अच्छे मन्दिरों का निर्माण हुआ किन्तु उनके अवशेष उड़ीसा और खजुराहो की अपेक्षा कम आकर्षक हैं। प्रथम दशाब्दी के अन्त में वास्तु की दक्षिण भारतीय शैली तंजौर (प्राचीन नाम तंजावुर) के राजराजेश्वर मंदिर के निर्माण के समय अपने चरम पर पहुंच गयी थी।

## हिन्दू मंदिर स्थापत्य:

- राम मंदिर, (अयोध्या) ,उत्तर प्रदेश
- शिव मंदिर, (काशी), उत्तर प्रदेश
- कृष्ण मंदिर, (मथुरा), उत्तर प्रदेश
- जैन मंदिर, ( गिरनार) गुजरात
- सोमनाथ मन्दिर, (द्वारका) गुजरात
- बृहदेश्वर मंदिर, तामिलनाडू
- मीनाक्षी मंदिर, तामिलनाडू
- कामाख्या मंदिर, (गुवाहाटी) असम
- अक्षरधाम मन्दिर, दिल्ली
- दक्षिणेश्वर मंदिर, (कलकत्ता) प.बंगाल
- बुद्ध मंदिर, (बोधगया), बिहार
- शबरीमला मंदिर,केरल

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

- विठ्ठल मंदिर, (पंढरपूर), महाराष्ट्र
- बालाजी मंदिर, आंध्र प्रदेश
- सुवर्ण मंदिर, (अमृतसर), पंजाब आदि आदि।

## 1.2.6. उपास्य देवी देवता:

हिंदू देववाद पर वैदिक, पौराणिक, तांत्रिक और लोकधर्म का प्रभाव है। वैदप्रणित धर्म में देवताओं के मूर्त रूप की कल्पना मिलती है। वैदिक मान्यता के अनुसार देवता के रूप में मूलशक्ति सृष्टि के विविध उपादानों में संपृक्त रहती है। एक ही चेतना सभी उपादानों में है। यही चेतना या अग्नि अनेक स्फुर्लिंगों की तरह (नाना देवों के रूप में) एक ही परमात्मा की विभूतियाँ हैं। (एकोदेव सर्वभूतेषु गूढ़)।

वैदिक देवताओं का वर्गीकरण तीन कोटियों में किया गया है- पृथ्वीस्थानीय, अंतरिक्ष स्थानीय और द्युस्थानीय। अग्नि, वायु और सूर्य क्रमश: इन तीन कोटियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन्हीं त्रिदेवों के आधार पर पहले 33 और बाद को 33 कोटि देवताओं की परिकल्पना की गई है। 33 देवताओं के नाम और रूप में ग्रंथभेद से बड़ा अंतर है। 'शतपथ ब्राह्मण'(4.5.7.2) में 33 देवताओं की सूची अपेक्षाकृत भिन्न है, जिनमें 8 वसुओं, 11 रुद्रों, 12 आदित्यों के सिवा आकाश और पृथ्वी गिनाए गए हैं। 33 से अधिक देवताओं की कल्पना भी अति प्राचिन है। ऋग्वेद के दो मंत्रों में (3.9.9 ; 1.52.6) 33 देवताओं का उल्लेख है।

इस प्रकार यद्यपि मूलरूप में वैदिक देववाद एकेश्वरवाद पर आधारित है, किंतु बाद को विशेष गुणवाचक संज्ञाओं द्वारा इनका इस रूप में विभेदीकरण हो गया कि उन्होंने धीरे-धीरे स्वतंत्र चारित्रिक स्वरूप ग्रहण कर लिया। उनका स्वरूप चरित्र में शुद्ध प्राकृतिक उपादानात्मक न रहकर धीरे-धीरे लोक आस्था, मान्यता और परंपरा का आधार लेकर मानवी अथवा अतिमानवी हो गया। वेदोत्तर काल में पौराणिक तांत्रिक साहित्य और धर्म तथा लोक धर्म का वैदिक देववाद पर इतना प्रभाव पड़ा कि वैदिक

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

देवता परवर्ती काल में अपना स्वरूप और गुण छोडक़र लोकमानस मे सर्वथा भिन्न रूप में ही प्रतिष्ठापित हुए। परवर्ती काल में बहुत से वैदिक देवता गौण पद को प्राप्त हुए तथा नए देवस्वरूपों की कल्पनाएँ भी हुई। इस परिस्थिति से भारतीय देववाद का स्वरूप और महत्व अपेक्षाकृत अधिक व्यापक हो गया। वैदिक धर्म में कोई भी उपासक अपनी रुचि के अनुसार अपने देवता के चुनाव के लिये स्वतंत्र था। तथापि शास्त्रों में इस बात की व्यवस्था भी बताई गई कि कार्य और उद्देश्य के अनुसार भी देवता की उपासना की जा सकती है।

इस प्रकार नृपों के देवता विष्णु और इंद्र, ब्राह्मणों के देवता अग्नि, सूर्य, ब्रह्मा, शिव निर्धारित किए गए है। एक अन्य व्यवस्था के अनुसार विष्णु देवताओं के, रुद्र ब्राह्मणों के, चंद्रमा अथवा सोम यक्षों और गंधर्वों के, सरस्वती विद्याधरों के, हरि साध्य संप्रदायवालों के, पार्वती किन्नरों के, ब्रह्मा और महादेव ऋषियों के, सूर्य, विष्णु और उमा मनुओं के, ब्रह्मा ब्रह्मचारियों के, अंबिका वैखानसों के, शिव यतियों के, गणपति या गणेश कूष्मांडों या गणों के विशेष देवता निर्धारित किए गए हैं। किंतु समान्य गृहस्थों के लिये इस प्रकार का भेदभाव नहीं लक्षित है। उनके लिये सभी देवता पूजनीय हैं। (गृहस्थानांच सर्वेस्यु)

हिंदू देवपरिवार का उद्भव ब्रह्मा से माना जाता है। त्रिदेव में ब्रह्मा प्रथम हैं। भारतीय धारणा के अनुसार ब्रह्मा ही सृष्टा हैं और वे ही प्रजापति हैं। वे एक हैं और उनकी इच्छा कि मैं बहुत हो जाऊँ (एकोऽहं बहुस्याम) ही विश्व की समृद्धि का कारण है। मंडूक उपनिषद् में ब्रह्मा को देवताओं में प्रथम, विश्व का कर्ता और संरक्षक कहा गया है। कर्ता के रूप में वैदिक साहित्य में ब्रम्हा का परिचय विभिन्न नामों से दिया गया है, यथा विश्वकर्मन, ब्रह्मस्वति, हिरणयगर्भ, प्रजापति, ब्रह्मा। पुराणों में इन नामों के अतिरिक्त धाता, विधाता, पितामह आदि भी प्रचलित हुए। वैदिक साहित्य की अपेक्षा पौराणिक साहित्य में ब्रह्मा का महत्व गौण है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

उपासना की दृष्टि से जो महत्ता विष्णु, शिव, यहाँ तक की गणपति और सूर्य को प्राप्त है, वह भी ब्रह्मा को नहीं मिला, किंतु वैदिक देवताओं में प्रजापति के रूप में ब्रह्मा सर्वमान्य हैं और इस रूप में वे आकाश और पृथ्वी को स्थापित करने वाले तथा अंतरिक्ष में व्याप्त रहते हैं। ये समस्त विश्व और समस्त प्राणियों को अपनी भुजाओं में आबद्ध किए रहते है। इस प्रकार ऋग्वेद में ब्रह्मा का अमूर्त रूप ही अथर्व मान्य है। मानवी रूप में इनकी कल्पना भी बड़ी प्राचीन है। अथर्व और बाजसनेयी संहिता में भी वे सर्वोपरि देवता के रूप में स्वीकार किए गए हैं।

## 1.2.8. तत्व-ज्ञान

तत्व–ज्ञान का अर्थ विचार शास्त्र, दर्शन शास्त्र नहीं होता, क्योंकि फिलॉसफी का अर्थ होता है चिंतन, मनन, विचारण, मानसिक सोच, जबकि तत्व ज्ञान का मतलब होता है वास्तविक जाना हुआ दर्शन, साक्षात्कार, अनुभूति। अब कोई कितना ही सोचे, सोच–विचार करके कहीं कोई पहुंचता नहीं।

### तत्व ज्ञान का अर्थ–

तत्वज्ञान आत्मज्ञान है। त अर्थात् परमात्मा, त्व अर्थात् जीवात्मा। जीवात्मा और परमात्मा के एक होने पर ही तत्व ज्ञान होता है। तत्व ज्ञान बोध कराता है कि सृष्टि का सार तत्व क्या है, निर्माण का रहस्य क्या है और हमारे अस्तित्व के उद्देश्य अर्थात् आत्म्मा के सत्य से हमें परिचित कराता है, तत्व ज्ञान को सहज करने के लिए पांच भागों में सत्य को विभक्त किया गया है– प्रथम– परमात्मा, द्वितीय– प्रकृति, तृतीय– जीव, चतुर्थ– समय और पंचम– कर्म।

### ईश्वर

ईश्वर स्वतंत्र है, परम शुद्ध और समस्त गुणों से पर है, वह सृष्टि के रचियता, संरक्षक और विनाशक है। ईश्वर पर समय और स्थान का बंधन नहीं होता है। ईश्वर सर्वव्यापी और अविनाशी है।

### प्रकृति

ईश्वर से ही जीव और प्रकृति की उत्पत्ति हुई है। प्रकृति को शक्ति भी कहते हैं। इस प्रकृति अर्थात् शक्ति के दो रूप हैं– अविद्या और विद्या। अविद्या प्रकृति का निम्न स्वरूप है और

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

विद्या प्रकृति का उच्चतम स्वरूप है। अविद्या को अपरा विद्या और विद्या को परा विद्या के नाम से भी जाना है।

प्रकृति के अविद्या स्वरूप को ही माया कहते हैं। माया का अर्थ है, या+माँ+सा– माया अर्थात् जो सत्य नहीं किन्तु सत्य प्रतीत होता है वही माया है। ईश्वर को सृष्टि की रचना के लिए अपनी माया रूपी शक्ति का ही आश्रय लेना पता पड़ता है। प्रकृति का स्वभाव जड़ है अर्थात् प्रकृति स्वयं से कुछ निर्माण नहीं करती है। प्रकृति को गति, चेतना से अर्थात् परमात्मा के संकल्प से प्राप्त होती है। जब सृष्टि की उत्पत्ति नहीं हुई होती है तो ईश्वर की यह दिव्य शक्ति साम्यावस्था में रहती है अर्थात् इसके तत्व सत्व रज और तम समान मात्रा में उपस्थित रहते हैं। ईश्वर जब सृष्टि की रचना का संकल्प लेते है तब इन तत्वों में विष्मता उत्पन्न होती है। सत्व रज और तम के विभिन्न आनुपातिक संयोग सृष्टि को विभिन्नता प्रदान करते हैं। सृष्टि के आदिकाल का प्रथम तत्व तमस है। तम से ही क्रमिक रूप से आकाश तत्व, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी तत्वों की उत्पत्ति होती है जिससे समस्त सृष्टि का प्रादुर्भाव होता है। पंच भूत तथा इन्द्रियों के भोग के विषय अर्थात् रूप रस गंध, स्पर्श शब्द यह सब अविद्या माया के स्वरूप हैं। इस संसार में जो भी इन्द्रियों द्वारा अनुभूत किया जा सकता है सब माया के अंतर्गत आता है। माया ईश्वर की अद्वितीय शक्ति है और यह संसार में ऐसे समाई हुयीं है जैसे गर्मी/ऊर्जा के साथ अग्नि। अगर अग्नि में से समस्त ऊष्मा को निकाल लिया जाये तो उसका कोई अस्तित्व नहीं रहता है। जिस तरह ताप के बिना अग्नि की कल्पना नहीं कर सकते उसी प्रकार ईश्वर की माया भी ऐसी ही शक्ति है जिसके बिना संसार की कल्पना करना भी असंभव है। अविद्या माया के कारण मनुष्य के अहंकार की पुष्टि होती है और अहम् के साथ ईर्ष्या, लोभ, क्रोध इत्यादि का भी जीवन में प्रवेश हो जाता है। माया के कारण ही मनुष्य नाशवान संसार को सत्य मानकर भौतिकता में उलझा रहता है। अविद्या अज्ञान पैदा करती है जो ईश्वर को भुला देती है। जीव आत्मा ईश्वर का ही अंश है किन्तु माया का प्रभाव दिव्य गुणों को आच्छादित कर अज्ञान को पैदा करती है जो जीव को संसार की ओर उन्मुख कर ईश्वर से दूर कर देता है।

परा विद्या को ब्रह्म विद्या भी कहते हैं, क्योंकि विद्या में शक्ति जीव के अन्दर सद्गुणों को विकसित करती है और सत्संग की इच्छा ज्ञान भक्ति प्रेम वैराग्य जैसे गुण प्रदान कर ईश्वर को प्राप्त करने का मार्ग दिखाती है। इन गुणों का विकास होने पर जीव ईश्वर दर्शन का अधिकारी होती है। विद्या रूपी शक्ति जीव में ईश्वरत्व की अनुभूति करा कर उसको स्वतंत्र और सामर्थ्यवान बनाती है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

आदि शक्ति का अविद्या रूप भी आवश्यक है। जिस तरह किसी भी फल का छिलका रहने पर फल बढ़ता है और फल जब तैयार हो जाता है तो छिलका फैंक देना पड़ता है। इसी तरह माया रूपी छिलका रहने पर धीरे–धीरे मर्म ज्ञान होता है। जब ज्ञान रूपी फल परिपक्व हो जाता है तब अविद्या रूपी छिलके का त्याग कर देना चाहिए। प्रकृति की कोई भी बाधा वास्तव में बाधा नहीं होती जो भी बाधा दिखाई पड़ती है वह शक्ति को जगाने की चुनौती होती है। उदाहरण के लिए बीच को जमीन में दबाने पर मिट्टी की परत, जो बीच के ऊपर दिखती है, बाधा की तरह दिखाई देती है किन्तु सत्य तो यह होता है कि जमीन बीच को दबा कर उसे अंकुरित होने में सहायता करती है। इसलिए शक्ति के दोनों रूप आवश्यक है। बंधन और मुक्ति दोनों ही करने वाली ही आदि शक्ति है उनकी माया से संसारी जीव माया में बंधा होता है, पर उनकी दया हो जाये तो वह बंधन से छूने में सहायता करती है। यही कारण है कि माया के प्रभाव से मुक्त होने के लिए देवी की आराधना की जाती है।

## जीवात्मा

आत्मा के दो रूप होते हैं– एक तो सार्वभौम सर्वोच्च आत्मा और दूसरी विशेष व्यक्तिगत आत्मा अर्थात् जीव आत्मा। आत्मा अपने सर्वोच्च रूप में अकर्ता, अभोक्ता, अपरिवर्तनशील, शाश्वत्, अजन्मा, अविनशी और समस्त विश्वों का सार है। जीवरूप में आत्मा को परिवर्तनशील, अनित्य, कर्मों का सम्पादन करने वाला और उनके फलों का भोग करने वाला, पुनर्जन्म लेने वाला और शरीर में सीमित माने गया है। वस्तुत जब अविद्या के कारण आत्मा शरीर से सम्बन्धित हो जाता है तो वह जीव आत्मा कहलाता है।

## समय

समय निर्बाधगति से निरंतर चलता रहता है। वर्तमान में प्रयुक्त हो रहे समय के मानक मनुष्य ने अपनी सुविधा के अनुसार बनाये हैं किन्तु इन मानकों का आधार सूर्य आदि ग्रह ही हैं। हर गृह की गति भिन्न होती है और यही विभिन्न गतियाँ समय में भिन्नता प्रतीत कराती हैं। उदाहरण के लिए एक दिन और रात्रि का निर्धारण सूर्य और पृथ्वी की घूर्णन गति और उनकी सापेक्ष स्थिति पर निर्भर है। इसी तरह चंद्रमा की स्थिति के आधार पर शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष का निर्धारण किया जाता है। ज्योतिष विज्ञान में विभिन्न घटनाओं का समय निर्धारण का आधार भी गृह नक्षत्र और उनकी विभिन्न गतियाँ हैं।

समय दो रूपों में अभिव्यक्त होता है– पदार्थ परक और व्यक्तिपरक। पदार्थ परक समय वह समय है जो सबके द्वारा मानी है जैसे– घड़ी में सेकंड मिनट और घंटे का समय। व्यक्ति

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

परक समय वह समय होता है जो मन को महसूस होता है। उदाहरण के लिए दुःख का समय मन को अधिक लम्बा प्रतीत होता है।

इस सृष्टि के अन्दर की समस्त वस्तुएं चाहे वह जड़ हो अथवा चेतन समय के द्वारा प्रभावित होती है। उदाहरण के लिए मनुष्य, जंतु वृक्ष इत्यादि सब जन्म लेने के उपरांत विभिन्न स्थितियों को प्राप्त करते हैं। जैसे बचपन, यौवन अवस्था और वृद्ध अवस्था। इसी प्रकार घर जो की निर्जीव वस्तुओं के प्रयोग से बना होता है किन्तु वह भी समय व्यतीत होने पर क्षीणता को प्राप्त होता है। हर वस्तु अथवा व्यक्ति अपने गुण और धर्म के अनुसार समय से प्रभावित होता है। जैसे पत्थर में परिवर्तन के लिए अधिक समय की आवश्यकता होती है किन्तु पुष्प कम समय में प्रभावित हो जाते हैं।

**कर्म**

यह सम्पूर्ण प्रकृति, कर्म नियम द्वारा ही संचालित हैं। व्यक्ति को अपने किये गए कर्म का फल अवश्य मिलता है क्योंकि बिना भोगे कर्म के फल का नाश नहीं होता। कर्म का फल यदि किसी कारण से इस जन्म में नहीं भोग पाये तो वह अगले जन्म में भोगना पड़ता है।

कर्म गुणवत्ता के आधार पर मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं। वह कर्म जो कि फल की प्राप्त करने की आशा में किये जाते हैं सकाम कर्म कहलाते हैं। इस प्रकार के कर्म ही व्यक्ति को सुख और दुख देते हैं। किसी भी कर्म करने के पीछे व्यक्ति का स्वार्थ छिपा होता है तो वह सकाम कर्म कहलाता है। सकाम कर्मों के दो भेद होते हैं– सत्कर्म और दुष्कर्म।

मनुष्य दिव्य प्राणी तो है परन्तु उसमें असत का भी तत्व है, जो उसे बुराई का शिकार होने देता है। अपनी स्वार्थी पूर्ति के लिये जब अशुभ कर्म किया जाता है, उदाहरण के लिये धन प्राप्ति के लिये झूठ बोलना वह दुष्कर्म कहलाता है। अपने सुख के लिये जब दान–पुण्य इत्यादि किये जाते हैं तो वह सत्कर्म किये जाते हैं।

यह सत्य है कि सत्कर्म शुभ होते हैं, लेकिन वह मोक्षदायक नहीं होते हैं। क्योंकि फल की प्राप्ति की इच्छा से जो भी कर्म किये जाते हैं, वह सदैव बंधनकारी होते हैं। वह कर्म जिन्हें व्यक्ति अपना कर्तव्य समझकर बिना फल प्राप्ति की इच्छा से करता है, वह निष्काम कर्म कहे जाते हैं। ऐसे कर्म व्यक्ति को बंधन में नहीं बांधते हैं एवं मोक्षदायक होते हैं।

कुछ लोग तटस्थ कर्म का भी इसमें समावेशन करते हैं। तटस्थ कर्म वह होते हैं जिनका कोई विशेष लाभ अथवा हानि नहीं होता है। इसी प्रकार कुछ शारीरिक कर्म अभ्यासवश कर लिये जाते हैं, जैसे भोजन ग्रहण करना, किसी स्थान पर जाने के लिये चलना।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

कर्म उसके फल के दृष्टिकोण से तीन प्रकार के होते हैं– संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म, क्रियमाण कर्म।

**संचित कर्म** – किसी मनुष्य के द्वारा वर्तमान समय में किया गया जो कर्म है, चाहे वह इस जन्म में किया गया हो अथवा पूर्व जन्म में, वह उसका संचित कर्म कहलाता है। व्यक्ति द्वारा किये गये समस्त कर्मों का संग्रह संचित कर्म होते हैं।

**प्रारब्ध कर्म** – संचित कर्मों का फल भोगना प्रारम्भ हो जाता है तो उन्हें प्रारब्ध कर्म कहते हैं।

**क्रियमाण कर्म** – जो कर्म वर्तमान काल में हो रहा है या किया जा रहा है, उसे क्रियमाण कर्म कहते हैं। ये क्रियमाण कर्म ही भविष्य में संग्रहित होकर संचित कर्म बनते हैं और संचित कर्म ही फिर भविष्य में प्रारब्ध कर्म बनते हैं।

कर्म क्रियान्वयन की दृष्टि में तीन प्रकार से निष्पादित होते हैं – शारीरिक, मानसिक और वाचिक। शारीरिक कर्म ज्ञानेन्द्रियों द्वारा देखे जा सकते हैं जैसे भवन का निर्माण इत्यादि कार्य। मानसिक कर्म में विभिन्न विचारों का चिंतन, कल्पनाशीलता और इच्छाओं आदि का समावेश होता है। वाचिक कर्म वह होते है जो वाणी द्वारा संपादित किये जाते हैं, जैसे– भवन निर्माण में मुख्य शिल्पिकार वाणी का प्रयोग कर दिशा निर्देश करता है। शारीरिक कर्म किसी न किसी रूप में चिन्हित किये जा सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति हृदय रोग से पीड़ित होता है तो यह अनुमान स्वभावतः आता है कि आहार और विहार का ध्यान नहीं रखा गया है। वाणी द्वारा किये गये कर्म ही कुछ समय तक अनुभव किये जा सकते हैं। जैसे– किसी पर यदि कटु शब्दों का प्रयोग किया जाये तो कहने वाले और सुनने वाले दोनों पर इसका प्रभाव स्पष्ट रहता है। इन दोनों के विपरीत मानसिक कर्मों के उद्‌गम को चिन्हित करना अत्यन्त कठिन होता है, क्योंकि मन का क्षेत्र अत्यंत विशाल होता है।

कर्म के समस्त रूप कम या अधिक मात्रा में एक–दूसरे में निहित होते हैं। उदाहरण के लिये विद्याध्यन मुख्यतः मानसिक कर्म है। यद्यपि बैठना भी एक प्रकार का शारीरिक कर्म है, किन्तु इसमें शारीरिक श्रम कम मात्रा में होता है। अध्ययन यदि अच्छी पुस्तकों का किया जाये तो सत्कर्म हो जाता है किन्तु यदि विषय आत्मा की उन्नति के अनुरूप नहीं हो तो यही कर्म दुष्कर्म बन जाता है। बचपन में किया हुआ अध्ययन संचित कर्म के रूप में एकत्र होता है और युवावस्था में व्यवसाय में सहयोग कर उसका फल प्रदान करता है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

कर्म को सक्रिय रूप अदृश्य मानसिक इच्छाएं देती है। अतः कर्म की गुणवत्ता सत्व, रज और तम प्रवृत्ति अर्थात् इच्छा के अनुसार होती है। मनुष्य की वर्तमान प्रकृति अर्थात् स्वभाव का आधार पूर्वजन्म के कर्म होते हैं। कुछ कर्म जिनका फल किसी कारणवश वर्तमान में नहीं मिल पाता है, वह मनुष्य के कार्मिक खाते में बीज के रूप में जमा हो जाते हैं और समय आने पर प्रवृत्ति और परिस्थितियों के रूप में फल देते हैं। जब तक सभी कर्मों का फल प्राप्त नहीं कर लिया जाता कर्म और फल को संतुलित नहीं कर लिया जाता, जन्म और मरण की प्रक्रिया चलती रहती है।

## ईश्वर, समय, जीव, कर्म और प्रकृति में समन्वय

जैसे जल बिना किसी प्रयोजन के नीचे की ओर ही बहता है क्यूंकि नीचे की ओर बहना पानी की प्रकृति है। वैसे ही सृष्टि रचना करना ब्रह्म की प्रकृति है। जीवात्मा का वास्तविक स्वरूप ब्रह्म है। ब्रह्म ही सर्वोच्च आत्मा है, लेकिन अज्ञानवश जीवात्मा को यह अहम् होता है कि वह ब्रह्म से तथक अपना अलग अस्तित्व रखता है। इसी अज्ञान के कारण वह संसार के बंधन में बंधता है। आत्मा का यह कर्तव्य और भोगत्व प्रकृति के गुणों के साथ उसके संयोग के कारण उत्पन्न होता है। आत्मा अकर्ता होते हुए भी माया के ही कारण अहम् भाव से प्रकृति की क्रियाओं में स्वयं को कर्ता मान लेता है और विभिन्न प्रकार के कर्म करने में व्यस्त हो जाता है। यद्यपि वह अपने यथार्थ स्वरूप में न वह करता है न वह भोगता केवल दृष्टा है। किन्तु अहंकार के कारण कर्म पर भाव आरोपित करने के कारण वह उन कर्मों को भोक्ता बन जाता है। यह कर्म का नियम है कि जो कर्ता है वह ही फलों को भोगता भी है।

जिस प्रकार किसी व्यक्ति के बाहरी कार्य शरीर के द्वारा किये जाते हैं किन्तु उन कार्यों पर नियंत्रण बुद्धि करती है उसी तरह जीव के द्वारा किये गये कार्यों का नियमन परमात्मा करता है। यद्यपि ईश्वर का यह अनुमोदन जीव की इच्छा के अनुसार ही होता है। कोई जीव यदि बुरा कर्म करना चाहता है तो भी ईश्वर उसको उसी दिशा में अनुमति प्रदान कर देता है। ईश्वर का यह नियमन जीव के द्वारा भूतकाल के में किये गये कर्मों के आधार पर होता है। यद्यपि कर्मों का जीव स्वामी है, किन्तु कर्मों के फल का अधिकार ईश्वर को है। जीव स्वयं अपने कर्म के फल को निर्धारित नहीं कर सकते क्योंकि यदि जीव को यह स्वतंत्रता मिल जाये तो वह केवल अच्छे फलों का ही भोग लेंगे और बुरे कर्म दूसरों पर आरोपित कर देंगे। इसके कारण सम्पूर्ण सृष्टि असंतुलित हो जायेगी। प्रकृति भी स्वभावतः जड़ होने के कारण कर्मफलों की व्यवस्था नहीं कर सकती। कर्म स्वयं में जड़ है। अतः यह भी अपने आप संचालित नहीं होते। केवल परमात्मा ही जीवों के कर्मफल के भोग की व्यवस्था करता है। इन

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

कर्मों का प्रथम गतिदाता स्वयं ब्रह्म है। वह एक बार कर्मों का संचालन करके फिर स्वयं उससे निवृत्त हो जाते हैं। सृष्टि संचालन के लिये ब्रह्म एक तत्व का दूसरे तत्व से संयोग करवा देते हैं। अतः कर्मों में प्रथम गति सृष्टि के प्रारम्भ करने के बाद वह जीवात्मा पर छोड़ देता है कि अब उसे कौन से कर्म करने हैं। मनुष्य की स्वतंत्रता केवल कर्म का चुनाव करने में स्वीकार की गई है। जीवात्मा को अपने निर्णयों से कर्म का चुनाव कर्म स्वातंत्र कहलाता है। किन्तु कर्म के फलों का अधिकार सिर्फ ईश्वर के पास ही है। ऐसा नहीं हो सकता कि कर्म कुछ और करें और फल उसे कुछ मिले। जिस प्रकार आम पककर अपने स्वभाव से आम ही बनता है, अनार नहीं। उसी प्रकार जीव को वही फल मिलता है जो उसने किया और ईश्वर उसे उसका फल प्रदान करते हैं। कर्म के सहारे ही जीव इस संसार व सांसारिकता से सम्बन्धित होता है। मृत्युपरांत शरीर के समस्त तत्व सृष्टि के उन तत्वों में विलीन हो जाते हैं जिनसे वह बने होते हैं किन्तु कर्म ही ऐसे होते हैं जिनका नाश नहीं होता, और यही पुनर्जन्म का आधार बनते हैं।

कर्मों का फल ईश्वर समयानुसार दो गुणों के आधार पर देते हैं– प्रथम कर्म की तीव्रता एवं गुणवत्ता, द्वितीय जीव की पात्रता और सहन करने की क्षमता। यही कारण है कि समस्त कर्मों का फल तत्काल नहीं मिलता है। कुछ कर्म जो बनवान नहीं होते हैं, तुरंत फलदायी होते हैं। कुछ कर्म जो बलवान तो होते हैं, किन्तु उनके फलीभूत होने के लिए परिस्थितियां नहीं होती हैं वह फल देने में समय लेते हैं। कुछ कर्मों का फल क्षणिक होता है और कुछ फल दीर्घकाल तक भोगने पड़ते हैं। यह समय कर्म और मनुष्य संकल्प अर्थात् इच्छाशक्ति के आधार पर निर्धारित होता है, जैसे– क्षुधा शांत करने के लिए भोजन से कुछ समय की शांति होती है और उसके लिए पुनः कर्म करना पड़ता है और उसके परिणाम भी दीर्घकालिक होते हैं। जब कर्म के शारीरिक, मानसिक और वाचिक तीनों रूपों की ऊर्जा को संकल्पशक्ति की सहायता से एक लक्ष्य की प्राप्ति में संचालित की जाती है तो फल अधिक शुभ और स्थायी परिणाम देने वाले होते हैं।

यदि व्यक्ति ईश्वर के नियमों को समझकर उसके अनुरूप चले तो जीवन में आनंद की प्राप्ति होती है। किन्तु मनुष्य की सबसे बड़ी भूल यही होती है कि वह अपनी सांसारिक इच्छाओं को पूर्ण करने में ही आनंद समझता है और समय के महत्व को अस्वीकार करने की भूल कर देता है। परिणामतः दुख पाता है। उदाहरण के लिये धोखा देकर शीर्घ धन प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु भेद खुल जाने पर पुनः लोगों के मन में अपने प्रति विश्वास को पैदा कर पाना अत्यंत कठिन होता है। यदि प्रकृति के नियम के अनुरूप धैर्य रखकर शुभ कार्य करते रहें और

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

फल के लिये समय की प्रतीक्षा करें तो दूरगामी परिणाम शुभ होते हैं, किन्तु इच्छाओं के अधीन होकर ईश्वरीय नियमों के विरूद्ध के जाकर समय से पहले शीघ्र परिणाम प्राप्त करने की इच्छा के कारण जो दुख प्राप्त होता है, वह आसानी से परिवर्तित नहीं किया जा सकता।

जीव की स्वतंत्रता उसी सीमा तक बदलती है जिस सीमा तक वह स्वयं को परमात्मा के साथ एकाकार कर देता है। इसके लिए आवश्यक तथ्य यह है कि स्वयं को स्वार्थपूर्ण रूचियों और अरूचियों से मुक्त कर लेना चाहिये। ज्योतिष विज्ञान मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक अवस्था को निरूपित करता है। ज्योतिष विज्ञान ग्रहों के माध्यम से कर्म के हर रूप को इंगित कर प्रगति और सुधार के लिये आधार बिन्दु देता है। पूर्व कर्मरूपी ऊर्जा शरीर, मन और आत्मा पर बंधन का निर्माण करते हैं और दिव्य चेतना के प्रभाव को अवरूद्ध करते हैं। माया कर्मों के अनुसार ही मनुष्य को प्रभावित करती है। इसी कारण हर व्यक्ति का विवेक, स्वभाव और ज्ञान भिन्न–भिन्न होता है। ज्योतिष विज्ञान उन अवरोधों को पहचानकर नकारात्मक कर्मों को शुद्ध और सकारात्मक कर्मों द्वारा उन्हें निष्प्रभावी करने का मार्ग बताते हैं। इससे दिव्य चेतना की ऊर्जा का प्रवाह सहज और संतुलित हो जाता है। इस प्रकार ज्योतिष आत्मा और परमात्मा के बीच के मध्य संतुलन बनाने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। तंत्र भी मनुष्य की स्वभाविक प्रवृत्तियों को रूपांतरिक कर उनको दिव्यता प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

मनुष्य का चरम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना होता है, जिसके लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य के सकाम भाव से किये गये समस्त कर्मों का नाश हो जाये। जब साधना के द्वारा व्यक्ति की प्रवृत्ति शुद्ध हो जाती है, तब मन की चंचलता समाप्त हो जाती है। जब व्यक्ति इन्द्रियों के विषयों के साथ आसक्ति से मुक्त हो जाता है। व्यक्ति के स्वभाव में सकाम की जगह निष्काम कर्म भावना का उदय हो जाता है। निष्काम भावना के उदय हो जाने पर व्यक्ति का अहंकार समाप्त हो जाता है। फिर उसे लाभ–हानि, शुभ–अशुभ की चिंता परेशान नहीं करती, क्योंकि विषयों में उसकी आसक्ति समाप्त हो जाती है। ज्ञान ही मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग है लेकिन इस ज्ञानमार्ग पर वही चल सकता है जिसने इन्द्रियों को साध लिया हो। इन्द्रियों के साधन के लिये जिज्ञासु को ऐसे गुरू के चरणों में जाना चाहिए, जिसे ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति हो चुकी हो तभी उचित मार्गदर्शन में मनुष्य अपनी अशुद्धियों को दूर कर तत्व ज्ञान अर्थात् अपने सत्य स्वरूप से साक्षात्कार कर पाने में समर्थ हो पाता है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

## 1.2.9 : परम्परा:

परम्परा वास्तव में एक समाजशास्त्रीय पद है। सामान्य रूप से जब हम परम्परा शब्द का उपयोग करते हैं तब हमारा आशय होता है अतीत से चली आ रही प्रथाएँ, रीति-रिवाज; किन्तु किसी भी अर्थ में परंपरा से हमारा तात्पर्य रूढ़ियों से नहीं होता। हमारा अर्थ होता है कि लम्बे समय से जो आचार-व्यवहार हम कर रहे हैं वह हमारी परम्परा है।

परम्परा की परिभाषा– श्री जिन्सबर्ग के शब्दों में,"परम्परा का अर्थ उन सभी विचारों आदतों और प्रथाओं का योग है, जो व्यक्तियों के एक समुदाय का होता है, और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होता रहता है।

परम्परा सामाजिक विरासत का वह अभौतिक अंग है जो हमारे व्यवहार के स्वीकृत तरीकों का द्योतक है, और जिसकी निरन्तरता पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरण की प्रक्रिया द्वारा बनी रहती है। परंपरा को सामान्यत: अतीत की विरासत के अर्थ में समझा जाता है। कुछ विद्वान 'सामाजिक विरासत' को ही परम्परा कहते हैं।

परम्पराओं का प्रत्येक समाज में अधिक महत्त्व होता है।

परम्परा, जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं हमारे व्यवहार के ढंगों का पता चलाते है। परम्पराएँ वह निर्धारित करती हैं कि हमें किस समय, ऊपर लिख चुके हैं, हमारे व्यवहार के तरीकों की द्योतक है, अर्थात् परम्परा के आधार पर हम किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए।

परम्पराओं के बल पर समाज – नवीन परिरस्थितियों, समस्याओं तथा संकटों का सामना अपेक्षाकृत अधिक सरलता तथा सफलतापूर्वक कर सकता है। यह सच है कि नवीन परिस्थितियों तथा संकटों का सामना करने के लिए नवीन तरीकों व नवीन ज्ञान पर आधारित होते है। यही नहीं, इस विषय में परम्परा या भूतकाल की देन

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

वर्तमान से अधिक होती है। इसीलिए डा0 मैकडूगल ने लिखा है कि हम जीवितों की अपेक्षा मृतकों से अधिक सम्बन्धित होते हैं। समस्याओं को सुलझाने या परिस्थितियों का सामना करने के पुराने ढ़गों की नींव पर ही जीवन की नवीन प्रणालियों को विकसित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त नवीन परिस्थितियों, समस्यों तथा संकटों का सामना करने के लिए जिस धैर्य, साहस तथा आत्मविश्वास की अपेक्षा होती है, वह हमें 'परम्परा' के अनुभवों से ही प्राप्त हो सकता है।

परम्परा व्यक्ति में सुरक्षा की भावना पनपती है। परम्परा अनुभवसिद्ध व्यवहारों का संग्रह होती है। हमारे पूर्वज, बहुत प्रयास के बाद, विभिन्न परिस्थितियों में जिन व्यवहारों या क्रियाओं के ढ़गों को सफल पाते है, उचित समझते हैं, वही हमें परम्परा के रूप में प्राप्त होते हैं। इस रूप में परम्परा पूर्वजों द्वारा व्यावहारिक ढ़ग से परीक्षित (tested) व्यवहार के सफल व उपयोगी तरीकों का ही दूसरा नाम है। इसीलिए इन तरीकों के सम्बन्ध में हमारे मन में दुविधा नहीं होती, और हम अपने अन्दर विभिन्न परिस्थितियों में एक सुरक्षा की भावना को स्वत: ही विकसित कर लेते है। कारण यह है कि हमें पहले से ही यह पता होता है कि किस परिस्थिति में हमें किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए।

परम्परा व्यक्ति के व्यवहारों को नियन्त्रित करती है। परम्परा, कुछ निश्चित व्यवहार-प्रतिमानों को प्रस्तुत करती है और समाज के सदस्यों से यह आग्रह करती है कि वे उन्हीं प्रतिमानों का अनुसरण करें। परम्परा के पीछे अनेक पीढ़ियों का अनुभव तथा सामाजिक अभिमति (social sanction)होती है, और इसीलिए इसमें व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित करने की शक्ति होती है। सामाजिक निन्दा के डर से ही व्यक्ति परम्परा को तोड़ने का साहस सामान्यत: नहीं करते। परम्परा' किसी व्यक्ति-विशेष की नहीं होती, वह तो 'सब' की होती है। यह सब 'प्रत्येक' पर अपना नियन्त्रणात्मक प्रभाव डालता है, और उसके व्यवहार को निर्देशित व संचालित करता है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

## भारतीय परम्पराएँ

भारतीय ज्ञान परम्परा के नैतिक आयामों द्वारा मानवता के कल्याण हेतु निर्देशित नैतिक मूल्यों का संवर्धन एवं अनुगमन करने से ही विश्व-कल्याण होना सम्भव है। इससे वर्तमान युग की अनेकानेक समस्याओं का निवारण किया जा सकता है।

**कुछ भारतीय भौतिक परम्परा:**

समय के साथ सब कुछ बदलता रहता है लेकिन उनमें से कुछ बदलाव लाभदायक होते हैं और कुछ नुकसानदायक। जैसे परंपरागत खेती को छोड़कर आधुनिक खेती को अपनाया जा रहा है। जैसे परंपरागत जलस्रोतों को छोड़कर आरो का जल पीया जा रहा है। पूर्वजों के अनुभव से प्राप्त परंपराएं और ज्ञान को संरक्षित करने के महत्व को शायद ही कभी कोई समझता होगा। हालांकि जब यह ज्ञान या परंपरा खो जाती है, तो इसका नुकसान भी उठाना पड़ता है। परंपरागत ज्ञान ही है विज्ञान।

भारत में ऐसी बहुत सारी परंपराएं और ज्ञान प्रचलन में था, जो अब लुप्त हो गया है या जो अब प्रचलन से बाहर है। परंपरागत ज्ञान या परंपरा का महत्व ही कुछ और था। ये परंपराएं व्यक्ति को हर तरह की बाधाओं से मुक्त रखने के लिए होती थीं, लेकिन अब ये प्रचलन में लगभग बाहर हो चली हैं। आओ जानते हैं कि ऐसी कौन-सी परंपराएं थी, जो अब प्रचलन से बाहर हैं।

नीम की दातून करना : अब यह कुछ गांवों में ही प्रचलित है कि नीम की छाल या डंडी तोड़कर उससे दांत साफ किए जाएं। कभी-कभी 4 बूंद सरसों के तेल में नमक मिलाकर भी दांत साफ किए जाते थे। इन दोनों ही नित्य कर्म को करने का फायदा यह था कि इससे जहां दांत और आंत साफ और मजबूत रहते थे वहीं इसके अन्य ज्योतिषीय लाभ भी थे। वैज्ञानिक कहते हैं कि दांतों और मसूड़ों के मजबूत बने रहने से आपकी आंखें, कान और मस्तिष्क भी सही रहते हैं।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

सुरमा लगाना : सुरमा दो तरह का होता है- एक सफेद और दूसरा काला। काले सुरमे का काजल बनता है। सुरमा लगाने का प्रचलन मध्य एशिया में भी रहा है और भारत में भी। दोनों ही तरह के सुरमा मूल रूप से पत्थर के रूप में पाए जाते हैं। इसका रत्न भी बनता है और इसी से काजल भी बनता है।

कभी-कभी सुरमा लगाने से जहां आंखों के सभी रोग दूर हो जाते हैं, वहीं इसका इस्तेमाल कुछ लोग वशीकरण में भी करते हैं। इसका रत्न धारण करने के भी कई चमत्कारिक लाभ हैं। सुरमा लगाने से जहां व्यक्ति किसी की नजर से बच जाता है, वहीं उसकी आंखें भी तंदुरुस्त रहती हैं। यह एक चमत्कारिक पत्थर होता है।

गुड़-चने और सत्तू का सेवन : प्राचीनकाल में लोग जब तीर्थ, भ्रमण या अन्य कहीं दूसरे गांव जाते थे तो साथ में गुड़, चना या सत्तू रखकर ले जाते थे। घर में भी अक्सर लोग इसका सेवन करते थे। यह सेहत को बनाए रखने में लाभदायक होता है। हालांकि आजकल लोग इसका कम ही सेवन करते हैं। सत्तू पाचन में हल्का होता है तथा शरीर को छरहरा बना देता है। जल के साथ घोलकर पीने से बलदायक मल को प्रवृत्त करने वाले, रुचिकारक, श्रम, भूख एवं प्यास को नष्ट करने वाले होते हैं।

कई बार कब्ज की समस्या को दूर करने के लिए लोग गुड़ और चने खाना पसंद करते हैं, लेकिन इसके अलावा गुड़ और चना एनीमिया रोग दूर करने में काफी मददगार साबित होता है। कहते हैं कि 'जो खाए चना, वह रहे बना'। गुड़ और चना न केवल आपको एनीमिया से बचाने का काम करते हैं, बल्कि आपके शरीर में आवश्यक ऊर्जा की पूर्ति भी करते हैं। शरीर में आयरन अवशोषित होने पर ऊर्जा का संचार होता है जिससे थकान और कमजोरी महसूस नहीं होती।

तुलसी और पंचामृत का सेवन : प्रतिदिन तुलसी और पंचामृत का सेवन करना चाहिए इसीलिए प्राचीनकालीन घरों के आंगन में तुलसी का पौधा होता था। हालांकि आज भी कई लोगों के घरों में यह मिल जाएगा लेकिन लोग इसका कम ही सेवन करते हैं। वे

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

तुलसी को भगवान को चढ़ा देते हैं जबकि इसके पत्ते को तांबे के लोटे में डालकर रखें और कुछ घंटों बाद उस जल को पीकर तुलसी के पत्ते को खा लेना चाहिए। ऐसा करने से जीवन में कभी भी कैंसर नहीं होगा और न ही किसी भी प्रकार का अन्य रोग।

तुलसी का पौधा एक एंटीबायोटिक मेडिसिन होता है। इसके सेवन से शरीर की प्रतिरोधक क्षमता में बढ़ोतरी होती है, बीमारियां दूर भागती हैं और शारीरिक द्रव्यों का संतुलन बना रहता है। इसके अलावा तुलसी का पौधा अगर घर में हो तो मच्छर, मक्खी, सांप आदि के आने का खतरा नहीं होता। दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन करना : आजकल दोनों हाथ जोड़कर 'नमस्ते' कहने का प्रचलन नहीं रहा। लोग एक-दूसरे से हाथ मिलाते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से देखें, तो 'नमस्ते' मुद्रा में हमारी अंगुलियों के शिरो बिंदुओं का मिलान होता है। यहां पर आंख, कान और मस्तिष्क के प्रेशर प्वॉइंट्स होते हैं।

दोनों हाथ जोड़ने के क्रम में इन बिंदुओं पर दबाव पड़ता है। इससे संवेदी चक्र प्रभावित होते हैं जिसकी वजह से हम उस व्यक्ति को अधिक समय तक याद रख पाते हैं। साथ ही, किसी तरह का शारीरिक संपर्क न होने से कीटाणुओं के संक्रमण का खतरा भी नहीं रहता। दूसरी ओर ऐसा करने से हमारे मन में उस व्यक्ति के प्रति तो अच्छे भाव आते ही हैं, उसके मन में भी हमारे लिए आदर उत्पन्न होता है।

पीपल में जल डालना : पीपल का पेड़ सबसे ज्यादा ऑक्सीजन का उत्पादन करता है। जहां अन्य पेड़-पौधे रात के समय में कार्बन डाई ऑक्साइड गैस का उत्सर्जन करते हैं, वहीं पीपल का पेड़ रात में भी अधिक मात्रा में ऑक्सीजन मुक्त करता है। इसी वजह से बड़े-बुजुर्गों ने इसके संरक्षण पर विशेष बल दिया है।

पुराने जमाने में लोग रात के समय पीपल के पेड़ के नजदीक जाने से मना करते थे। उनके अनुसार पीपल में बुरी आत्माओं का वास होता है, जबकि सच तो यह है कि

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

ऑक्सीजन की अधिकता के कारण मनुष्य को दम घुटने का अहसास होता है। जिस घर के पास पीपल का वृक्ष होता है, वहां के लोग निरोगी रहते हैं।

महत्वपूर्ण व्रत : हालांकि अब यह परंपरा महिलाओं तक ही सीमित रह गई है। एकादशी, प्रदोष, चतुर्थी, पूर्णिमा और अमावस्या का व्रत रखना क्यों महत्वपूर्ण है? इसका उल्लेख पुराणों में मिलता है। ये चन्द्र से संबंधित व्रत हैं। इन विशेष दिनों में व्यक्ति के शरीर और मन में बदलाव होते हैं।

यदि इन दिनों में व्यक्ति सिर्फ फलाहार ही करे, तो निश्चित ही वह सभी तरह की बाधाओं से मुक्त होकर सुखी जीवन-यापन कर सकता है। प्राचीनकाल में पहले व्यक्ति इन दिनों व्रत रखता ही था।

**परंपरागत पोशाक :** आजकल कोई परंपरागत पोशाक नहीं पहनता। पहले के लोग ढीले-ढाले वस्त्र पहनते थे, जैसे कुर्ता-पायजामा, धोती-कुर्ता, पगड़ी, साफा या टोपी, खड़ाऊ, सूती या खादी के कपड़े आदि। इन्हें पहनकर एक अलग ही शांतिदायक अनुभव होता था। हालांकि आजकल तंग, भड़कीले और शरीर को दुख देने वाले कपड़े ही पहने जाते हैं। कुछ कपड़े तो ऐसे होते हैं जिसे पहनकर न तो आप ठीक से बैठ सकते हैं और न ही सो सकते हैं। खड़े भी कपड़ों के अनुसार ही रहना होता है।

जो वस्त्र आपके तन को सुख दे या तन को अच्छा लगे, वही खास होता है। दूसरी बात, वस्त्र मौसम के अनुकूल भी होना चाहिए। प्राचीन लोगों ने सोच-समझकर ही वस्त्रों का निर्माण किया था। वे चाहते तो पहले ही तंग पैंट और शॉर्ट शर्ट बना सकते थे। यह कोई बहुत सोचने-समझने का काम नहीं था।

लोक नृत्य-गान, लोकभाषा, लोक इतिहास और लोक व्यंजन : भारतीय समाज के लोकनृत्य, गान, भाषा और व्यंजन में कई राज छुपे हुए हैं। इनका संरक्षण किए जाने की जरूरत है। आप जिस भी क्षेत्र में रहते हैं वहां की भाषा से प्रेम करें। वहां की भाषा के मुहावरे, लोकोक्ति, लोकनृत्य, लोक-परंपरा, ज्ञान, व्यंजन आदि के बारे में ज्यादा

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

से ज्यादा ज्ञान हासिल करें। वक्त के साथ यह सभी खत्म हो रहा है। उदाहरण के लिए मालवा से मालवी और कश्मीर से कश्मीरियत खत्म होती जा रही है।

क्या आप सोच सकते हैं कि यदि कश्मीरियत होती तो वहां कितनी शांति, सुख और सुगंध होती। सचमुच ही कश्मीर के लोगों में अब कश्मीरियत नहीं बची। जो क्षेत्र अपनी लोक-परंपरा और भाषा को खो देता है, देर-सबेर उसका भी अस्तित्व समाप्त हो जाता है। वहां एक ऐसा स्वघाती समाज होता है, जो अपनी पीढ़ियों को बर्बादी के रास्ते पर धकेलता रहता है। यदि ऐसा नहीं होता तो आधुनिकता के नाम पर अपनी लोक-परंपरा खो रहे लोग भी एक दिन यह देखते हैं कि हमारे क्षेत्र में हम अब गिनती के ही रहे हैं।

परंपरागत नुस्खे : पहले के लोगों को इसका बहुत ज्ञान होता था लेकिन वर्तमान पीढ़ी यह ज्ञान प्राप्त नहीं करती, क्योंकि अब उनकी दादी और नानी या दादा और नाना भी वैसे नहीं रहे, जो अपने अनुभव और ज्ञान को अपनी पीढ़ियों में हस्तांतरित करें। गाय के दूध में हींग या मैथी मिलाकर पीने से कब्ज की शिकायत दूर हो जाती है। जन्म घुट्टी पिलाने से बच्चा स्वस्थ हो जाता है।

## 1.2.10.: जीवन की एकात्मता:

जदुनाथ सरकार तथा हरबर्ट रिजेल आदि विद्वानों का मत है कि भारत में परस्पर विरोधी विचारों, सिधान्तों भाषाओं, रहन-सहन के ढंगों, अचार-विचार तथा वस्त्रों एवं खाद्यानो आदि बहुत से बातों में विभिन्नता के होते हुए भी जीवन की एकता पाई जाती है। इस एकता का आधार में विभिन्नता के होते हुए भी जीवन की एकता पाई जाति है।

प्राणियों के विकास का सूत्र एकीकरण से निकलता है। संस्कृति, सभ्यता व संस्कारों का निर्माण मानवता के मूल्यों से संभव है। समाज का संपूर्ण ढांचा एकता पर खड़ा

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

है। लोग एकता की शक्ति को जब पहचानेंगे तभी उत्कृष्ट समाज की नींव रखी जा सकती है। यदि यह शक्ति पवित्र उद्देश्यों के लिए कार्यशील हो तो देश की प्रगति में आने वाली बाधाएं निश्चय दूर होंगी और विश्व कल्याण होगा। इस मानवीय गुण को राष्ट्रीय एकता, एकीकरण या सामुदायिक समरसता व सांप्रदायिक सौहार्द्र अथवा अन्य किसी स्वरूप में प्रकट किया जा सकता है। मानव के शारीरिक एवं मानसिक उत्थान से लेकर भौतिक और आध्यात्मिक सफलता के लिए एकता का गुर अति उपयोगी सिद्ध हुआ है। एकता सदैव शांतिपूर्वक प्रयोगों से प्रस्फुटित होती है, इसमें भावनात्मक एकता की ऊर्जा चाहिए। समस्त जीवधारी अपनी एकता-भावना को तरह-तरह से प्रदर्शित करते हैं। इस भावना में दृढ़ इच्छाशक्ति का अंकुरण होता आया है। पशु-पक्षी, पेड़-पौधे तथा अन्य जीवित पदार्थ तो एकता को ही अपना जीवन मानते हैं। उनकी एकता का दर्शन मनुष्यों के लिए प्रेरणा-श्चोत है। चीटियों से लेकर हाथियों तक एकता के दृश्य देखने को मिलते हैं। देशभक्ति, प्रेम, शांति समृद्धि के लिए एकता अनिवार्य गुण है। इसमें कहीं भेद हो, तो एकता नहीं टिकेगी। अत: एकता का आदर्श सामने रखना चाहिए, तब स्वत: इसका रसास्वादन होने लगेगा। घर से एकता का पाठ आरंभ किया जाए तो आगे का मार्ग स्वत: बन जाएगा। घर के बाद परिवार, कुटुंब, समुदाय और समाज को एक सूत्र में पिरोना चाहिए। लोग एकता का मर्म समझें तो संसार में सुख-चैन की आकांक्षा पूर्ण हो सकती है। आपसी मेल-मिलाप से चलकर भाईचारे की राह बहुत दूर तक जाती है। संकट, दुख, पीड़ा, कष्ट या प्राकृतिक प्रकोप जब असहनीय हो तब यही एकता का मरहम उनके घावों को भरने के काम आता है। मानवता और एकता अन्योन्याश्रित हैं। इसलिए मानवता के लिए एकता उसी तरह महत्वपूर्ण है, जिस तरह एकता के लिए मानवता।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सामाजिक एकता का तात्पर्य समाज के सदस्यों के मध्य आपसी भावनात्मक सम्बन्धों का अध्ययन अर्थात उनके भावनात्मक सम्बन्धों

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

का अध्ययन है। मनुष्य समाज का एक भावनात्मक प्राणी है। भावना के कारण ही वे एक-दूसरे के साथ जुड़ते हैं और भावना के कारण ही वे एक-दूसरे से दूरी बनाते हैं।

## सारांश

प्रारंभ में अच्छे हेतु से बांधा गया समाज एकात्म जीवन जीता था। उसके उस जमाने के अनुसार उपाय ढूँढ़े थे। हजारों सालों से वह प्रवाह बहता रहा। भारत की इस संस्कृति के दर्शन के लिए देश दुनिया से लोग आते थे। सराहनीय जो था उसका अनुकरण हुआ। आज उनकी प्रासंगिता कितनी है, यह सोच–विचार कर हमें आगे बढ़ना चाहिए। विज्ञान युग के अनुसार क्या काटना, क्या जोड़ना इसका निर्णय ले सकते हैं।

## अवधारणात्मक शब्दों का अर्थ (Meaning of Conceptual terms)

- **तत्व ज्ञान -** तत्व-ज्ञान का अर्थ विचार शास्त्रए दर्शन शास्त्र नहीं होताए क्योंकि फिलाॅसफी का अर्थ होता है चिंतन, मनन, विचारण, मानसिक सोच, जबकि तत्व ज्ञान का मतलब होता है वास्तविक जाना हुआ दर्शन, साक्षात्कार, अनुभूति।
- **परम्परा -** परम्परा का अर्थ उन सभी विचारों आदतों और प्रथाओं का योग है, जो व्यक्तियों के एक समुदाय का होता है, और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होता रहता है।

## स्व–मूल्यांकन (Self-Assesment)

### दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long answer type questions)

1. भारत के ग्राम्य जीवन की झांकी प्रस्तुत कीजिए।
2. भारत के शहरी जीवन को आप किस दृष्टि से देखते हैं?
3. आपके अभिमत में समाज को बांधने वाले कारक कौन–कौन से हैं?
4. वर्तमान भारतीय समाज की प्रमुख चुनौतियों पर प्रकाश डालिये।
5. वर्तमान समाज के विघटनकारी घटक कौन–से हैं?

### लघु उत्तरीय प्रश्न (Short answer type questions)

1. पूरकता क्या हैं?
2. आत्म निर्भरता को स्पष्ट कीजिए?

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

3. परम्पराओं और रूड़ियों में विभेद कीजिए।
4. ग्राम गणतंत्र क्या थे?
5. आत्मनिर्भरता और अंर्तनिर्भरता के अंतर को स्पष्ट कीजिए।

### अति लघुउत्तरीय / वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Very short/ Objective type questions)

1. एकाकी परिवार क्या हैं?
2. संयुक्त परिवार को समझाइये।
3. परिवार में मुखिया की दो विशेषताओं को लिखिए।

## प्रदत्त कार्य (Assignment)

- किसी मेले में जाकर वर्णन कीजिए।
- पुराने मंदिरों में छिपा इतिहास''लिखिए।
- ''मैं कौन हूँ, विश्व में अपने देश की क्या पहचान है, इसको जान कर मित्रों को बताईऐ।

## संदर्भ (References)

1. स्वामी विवेकानंद की जीवनी (भारत यात्रा का विशेष अध्ययन) – प्रकाशक रामकृष्ण मठ
2. महात्मा गांधी की जीवनी। (भारत यात्रा का विशेष अध्ययन) – प्रकाशक – पवनार आश्रम, महाराष्ट्र।
3. Roses in December – भगिनी निवेदिता (मेल देखने के बाद का विवरण)
4. मेरे सपनों का भारत – स्वामी विवेकानंद

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

## इकाई– 3 संस्कार, संस्कृति, सांस्कृतिक जीवन प्रवाह

**उद्देश्य :–**

इस इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे कि

- उस उच्च संस्कृति की पारिवारिक व्यवस्था से संस्कारों का वहन और अपना दायित्व।
- कौनसे परिवर्तनीय घटक हैं, उसे जानकर पर्यायों का विचार।
- जीवन मूल्यों की पहचान और हम से अपेक्षा
- सांस्कृतिक समस्याओं की पहचान और परिवर्तन के कार्यक्रमों की दिशा।

## 1.3.1. पारिवारिक संस्कार

संस्कार मनुष्य को आचरणवान और चरित्रवान बनाते थे। संस्कार मनुष्य जीवन को परिष्कार एवं शुद्धि प्रदान करते है, तथा मनुष्य को पवित्रता प्रदान करके व्यक्तित्व को निखारते हैं। संस्कार मनुष्यों को सामाजिक एवं आध्यात्मिक नागरिक बनाने में सहयोग करते हैं। संस्कार मानव के समाजीकरण में सहयोगी होते हैं।

इंसान की पहचान उसके संस्कारों से बनती है। संस्कार उसके समूचे जीवन को व्याख्यायित करते हैं। संस्कार हमारी जीवनी शक्ति है, यह एक निरंतर जलने वाली ऐसी दीपशिखा है, जो जीवन के अंधेरे मोड़ों पर भी प्रकाश की किरणें बिछा देती है। उच्च संस्कार ही मानव को महामानव बनाते हैं। सद्संस्कार उत्कृष्ट अमूल्य संपदा है, जिसके आगे संसार की धन दौलत का कुछ भी मोल नहीं है। सद्संस्कार मनुष्य की अमूल्य धरोहर है, मनुष्य के पास यही एक ऐसा धन है, जो व्यक्ति को इज्जत से जीना सिखाता है और यही सुखी परिवार का आधार है। वास्तव में बच्चे तो कच्चे घड़े के समान होते हैं , उन्हें आप जैसे आकार में ढालेंगे वे उसी आकार में ढल जाएंगे। मां के उच्च संस्कार बच्चों के संस्कार निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए आवश्यक है कि सबसे पहले परिवार संस्कारवान बने, माता-पिता संस्कारवान बनें, तभी

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

बच्चे संस्कारवान और चरित्रवान बनकर घर की, परिवार की प्रतिष्ठा को बढ़ा सकेंगे। अगर बच्चे सत्पथ से भटक जाएंगे तो उनका जीवन अंधकार के उस गहन गर्त में चला जाएगा, जहां से पुन: निकलना बहुत मुश्किल हो जाएगा। आज की भोगवादी संस्कृति ने उपभोक्तावाद को जिस तरह से बढ़ावा दिया है, उससे बाहरी चमक-दमक से ही आदमी को पहचाना जाता है। यह स्थिति गंभीर है। उससे ही अपसांस्कृतिक मूल्यों को बढ़ावा मिलता है और ये ही स्थितियां पारिवारिक बिखराव का बड़ा कारण बन रही है।

भारत को आज सांस्कृतिक क्रांति का इंतजार है। यह कार्य सरकारी तंत्र पर नहीं छोड़ा जा सकता है। सही शिक्षा और सही संस्कारों के निर्माण के द्वारा ही परिवार, समाज और राष्ट्र को वास्तविक अर्थों में स्वतंत्र बनाया जा सकता है। जिन परिवारों में पारिवारिक सौहाद्र्र का जो प्रशिक्षण दिया जा रहा है उसके परिणाम भी सुखद रहे हैं। पारिवारिक सौहाद्र्र के इस तरह के प्रयास हमारे परिवारों के लिए संजीवनी बन सकते हैं। यदि हमारी सोच नकारात्मक होगी, तब नकारात्मक विचार ही जाग्रत होंगे। इसी तरह हमारी सोच सकारात्मक होगी तो हमारे व्यक्तित्व का निर्माण सकारात्मक रूप से होगा। हम पर नकारात्मक प्रवृत्तियां हावी नहीं हो सकेंगी।

सभी महापुरूष, महान महिलायें अच्छे पारिवारिक संस्कारों की देन है। आम जनता कैसे कम अच्छे नागरिक तो दे सकते हैं?

## 1.3.2. संस्कृति क्या है ?

संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र स्वरूप का नाम है, जो उस समाज के सोचने, विचारने, कार्य करने के स्वरूप में अन्तर्निहित होता है। यह 'कृ' (करना) धातु से बना है। इस धातु से तीन शब्द बनते हैं।संस्कृती,प्रकृती,विकृती।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

'प्रकृति' की मूल स्थिति,यह संस्कृती हो जाता है और जब यह बिगड़ जाता है, तो 'विकृती' हो जाता है।

इस प्रकार संस्कृति के अन्तर्गत वह सब कुछ सम्मिलित है जो कुछ मनुष्य समाज में सीखता है, जैसे-ज्ञान-धार्मिक, विश्वास, कला, कानून, नैतिकता, रीति-रिवाज, व्यवहार के तौर-तरीके, साहित्य, संगीत तथा भाषा आदि। सहज व्यवहार जैसे साँस लेना इत्यादि संस्कृति के अन्तर्गत नहीं आते है।

" संस्कृति वह दुनिया है, जिसमे एक व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक निवास करता है। चलता है, फिरता है और अपने अस्तित्व को बनाए रखता है।" ब्रूम व सेल्जनिक के अनुसार," समाज विज्ञानों में संस्कृति का अर्थ 'मनुष्य की सामाजिक विरासत' से लिया जाता है। जिसमे ज्ञान विज्ञान, विश्वास व प्रथाएं आती है।"

संस्कृति का सामाजिक जीवन में विशेष महत्व है। संस्कृति समाज की ऐसी उपलब्धि है, जो बहुत हद तक अमर है, इसलिए व्यक्ति और समस्त समाज के जीवन में संस्कृति के विभिन्न प्रकार्य होते हैं। संस्कृति एक ट्रेडमार्क का काम करती है, इस अर्थ में कि इसके आधार पर हम विभिन्न समाजों के बीच अंतर स्थापित कर सकते हैं।

संस्कृति के तीन घटक हैं। जैसे कि संज्ञानात्मक (Cognitive), आदर्शात्मक (Normative) और भौतिक (Material) । संज्ञानात्मक भाग का सरोकार समझ और जानकारी से है।

"भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा" इस वाक्य से यह विदित होता है कि हमारे भारत की प्रतिष्ठा संस्कृत और संस्कृति इन्ही दोनों में निहित है और संस्कृत-संस्कृति का ही मूल है। अतएव पद्मश्री आचार्य कपिलदेव द्विवेदी ने कहा है -

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

**संस्कृतं संस्कृतेर्मूलं ज्ञानविज्ञानवारिधिः।**
**वेदतत्वार्थसंजुष्टं लोकाऽऽलोककरं शिवम्॥**

संस्कृति शब्द के संकेतग्रहणार्थ (अर्थ प्राप्त्यर्थ) "शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानं कोशाप्तवाक्याद्व्यवहारतश्च" इस सूक्ति के अनुसार कोशों पर दृष्टिपात करने पर संस्कृति शब्द की अनुपलब्धता पाई जाती है तदनन्तर कोशेतर शक्तिग्राहक तत्वों से संस्कृति शब्द का शक्तिग्रहण करने पर"सम्यक् कृतिः संस्कृतिः" अथवा "संस्कृतिः संस्करणम्" इत्यादि व्युत्पत्ति प्राप्त होती है। सम् उपसर्ग पूर्वक (डु)कृ(ञ्) करणे धातु से पाणिनि के "स्त्रियां क्तिन्" सूत्र से क्तिन् प्रत्यय होकर संस्कृति शब्द की उत्पत्ति होती है, तथा भारत में रहने वाली संस्कृति भारतीय संस्कृति कही जाती है। यही संस्कृति शब्द आगे अर्थानन्तर में संस्कार शब्द को देती है। संस्कृति मनुष्य के वर्तमान, भूत तथा भविष्य का सर्वाङ्गपूर्ण प्रकार है। यह देश की वैज्ञानिक, कलात्मक तथा आध्यात्मिक उपलब्धियों का प्रतीक होती है तथा देश के मानसिक विकास को सूचित करती है। विचार और कर्म के क्षेत्रों में राष्ट्र का जो सृजन है वही उसकी संस्कृति है। हमारी जीवनव्यवस्था हमारी संस्कृति है। वह जीवन की प्राणवायु है, जो उसके चैतन्य-भाव को प्रमाणित करती है। संस्कृति हवा में नहीं रहती, उसका मूर्तिमान् रूप होता है। जीवन के नानाविध रूपों के समुदायों में संस्कृति निहित है। सृष्टि के आरम्भ से संस्कृति का विकास तथा हस्तांतरण/परिवर्तन होता चला आ रहा है। जीवन का जितना भी ऐश्वर्य है, उसकी सृष्टि मनुष्य के मन, प्राण और शरीर के दीर्घकालीन प्रयत्नों के फलस्वरूप हुई है। मनुष्य जीवन रुकता नहीं, पीढ़ी-दर-पीढ़ी निरन्तर आगे बढ़ता रहता है। इसके साथ-साथ संस्कृति के रूपों का उत्तराधिकार भी हमारे साथ चलता है अत एव हमारे सनातन धर्मादि, दर्शन, कला तथा साहित्य आदि इसी संस्कृति के अंग हैं।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

संस्कृति विश्व के प्रति अनन्त मैत्री की भावना है। संस्कृति के द्वारा हम दूसरों के साथ सन्तुलित स्थिति प्राप्त करते हैं। ऋग्वेद में कहा भी गया है -

**समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।**
**समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥**

संस्कृति के द्वारा हम स्थूल भेदों के भीतर व्याप्त एकत्व के अन्तर्यामी सूत्र तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं और उसे पहचान कर उसके प्रति अपने मन को विकसित करते हैं। प्रत्येक राष्ट्र की दीर्घकालीन ऐतिहासिक हलचल का लोकहितकारी तत्त्व उसकी संस्कृति है। संस्कृति राष्ट्रीय जीवन की आवश्यकता है। जिन मनुष्यों के सामने संस्कृति का आदर्श ओझल हो जाता है उनकी प्रेरणा के स्रोत भी मन्द पड़ जाते हैं। किन्तु सच्ची संस्कृति वह है जो सूक्ष्म और स्थूल, मन और कर्म, अध्यात्म जीवन और प्रत्यक्ष जीवन इन दोनों का कल्याण करती है।

संसार में देश भेद से अनेक प्रकार के मनुष्य है। अतः उनकी संस्कृतियाँ भी अनेक हैं। किन्तु देश और काल की सीमा से बँधे हम मनुष्यों का घनिष्ठ सम्बन्ध या परिचय किसी एक ही संस्कृति से सम्भव है। वही हमारी आत्मा और मन में रमी हुई होती है और उनका संस्कार करती है। परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि इससे हमारे विचारों का संकुचन होता है। सत्य तो यह है कि जितना अधिक हम संस्कृति के मर्म को अपनाते हैं उतने ही ऊँचे उठकर हमारा व्यक्तित्व संसार के दूसरे मनुष्यों, धर्मों, विचारधाराओं और संस्कृतियों से मिलने और उन्हें जानने के लिए समर्थ और अभिलाषी बनता है और अपने केन्द्र की उन्नति ही बाह्य विकास की नींव है। अतः संस्कृति जीवन के लिए परम आवश्यक है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

भारत की संस्कृति विश्व की समस्त संस्कृतियों के लिए मार्गदर्षिका है। इस संस्कृति में वह विशेषता है, जो नित्य प्रतिदिन नवीन होती हुई समस्त संस्कृतियों को परिपोषित करती हुई उन्हें मातृत्व का आह्लाद प्रदान कर सकती है। भारत की सनातन संस्कृति न केवल भारतीयों को एकजुट रखने में सामर्थ्यशालिनी है अपितु इस सार्वभौम संस्कृति में संसार के सभी राष्ट्रों को एकसूत्र में बाँधने का परम-तत्त्व भी समाया हुआ है।

**सत्यहिंसागुणैः श्रेष्ठा विश्वबन्धुत्वशिक्षिका।**
**विश्वशान्तिसुखाधात्री भारतीया हि संस्कृति॥**

इस सनातन संस्कृति के चार मूल-सिद्धान्त हैं जो विश्व-शान्ति का मार्ग प्रशस्त करने में पूर्ण सक्षम है-

1. वसुधैव कुटुम्बकम् - समस्त विश्व एक कुटुम्ब या परिवार है।
2. एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति - सत्य एक है, विद्वान् इसे विभिन्न माध्यमों से कहते हैं।
3. सर्वे भवन्तु सुखिनः - सभी का कल्याण हो, सभी सुखी होवें।
4. यद् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे - जो पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में है।

भारतीय संस्कृति का यह वैचारिक/सैद्धान्तिक आधार इतना सुदृढ़ तथा समन्वयकारी है कि यह समस्त विश्व को एकसूत्र में पिरोने की क्षमता रखता है। अध्यात्मिकता, त्याग, सत्य और अहिंसा पर आधारित यह संस्कृति मनुष्य के आचरण को सुधार कर समाज में एकता और बन्धुत्व के भावों का समावेश करती है तथा देश और समाज से लेने की अपेक्षा देने की प्रेरणा देती है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

राष्ट्र-संवर्धन का सबसे प्रबल कार्य संस्कृति की साधना है। उसके लिए बुद्धिपूर्वक यत्न करना आवश्यक है। भारत की संस्कृति की धारा अति प्राचीन काल से बहती चली आयी है, हमें उसका सम्मान करना चाहिए, किन्तु केवल उसके प्राण-तत्त्व को अपनाकर ही हम आगे बढ़ सकते हैं। अपने ही जीवन की उन्नति, विकास और आनन्द के लिए हमें अपनी संस्कृति की सुध अवश्य लेनी चाहिए। संस्कृति की प्रवृत्ति महाफलदायिनी होती है। भारतीय संस्कृति ईश्वर की सर्वव्यापक सत्ता को स्वीकार कर व्यक्ति के व्यक्तित्व में त्याग भाव का आरोपण करती है -

**ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।**
**तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥1**

इसके अनुसार परमात्मा की स्थिति को निरन्तर अपने साथ समझते हुए, इस संसार में अनासक्त भाव से सांसारिक, विषयों, द्रव्यों एवं पदार्थों आदि का उपभोग करना चाहिए। इन उपभोगों की यथार्थता को जानने का माध्यम भी भारतीय संस्कृति ही है, जो हमें बताती है कि विषयों का उपभोग करने से कामना कभी भी शान्त नहीं होती अपितु अग्नि में घी के सदृश निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होती रहती है-

**न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।**
**हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाऽभिवर्धते॥2।।**

कर्म-प्रधान इस संस्कृति में अकर्मण्यता का कोई स्थान नहीं है। कर्मयोग निष्ठा से ही मानव समाज शतजीवी हो सकता है:-

**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतंसमाः।।3।।**

किन्तु करणीय समस्त कर्मों को मनुष्य निष्काम-भाव से करे तभी वह कर्मबन्धन से मुक्त हो सकता है और यही कर्मयोग है, जिसका 'गीता' हमें ज्ञान कराती है-

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।**
**मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥**
**योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गत्यक्त्वा धनंजय।**
**सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥4।।**

त्यागपूर्वक, निष्काम भाव से कर्म करते हुए हमें जीवन में 'धर्म' की प्रधानता को अंगीकार करना चाहिए। धर्म जीवन का सक्रिय तत्त्व है, जीवन का जितना विस्तार है उतना ही व्यापक धर्म का क्षेत्र है। धर्म लोकस्थिति का सनातन बीज है। वह गंगा के ओजस्वी प्रवाह की भांति जीवन के सुविस्तृत क्षेत्र को पवित्र तथा सिंचित करने वाला अमृत है। मनुष्य-जीवन में जय-पराजय, सम्पत्ति-विपत्ति, सुख-दुःख सर्वदा एक समान नहीं रहते परन्तु धर्म ही एक वस्तु है, जो सर्वदा एक समान रहती है, अतः 'महाभारत' में महर्षि वेद व्यास का उद्घोष है-

**न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्।**
**धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः॥**
**नित्यो धर्मः सुख-दुखे त्वनित्ये।**
**जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥5।।**

साथ ही धर्माश्रयी मनुष्य को धर्माचरण में सर्वदा सतर्क रहना चाहिए क्योंकि धर्म जीवन तथा अमरत्व से भी अधिक श्रेयस्कर है। धर्म का उल्लंघन मृत्यु से बढ़कर दुःखदायी होता है। अतः प्राणों का उत्सर्ग करके भी धर्म की रक्षा तथा उसका अनुपालन करना चाहिए। इसी को युधिष्ठिर स्पष्ट शब्दों में घोषित करते हैं-

**मम प्रतिज्ञां च निबोध सत्यां वृणे धर्ममृताज्जीविताच्च॥6।।**

भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी पुरुषार्थ-चतुष्टय का सिद्धान्त जीवन को सार्थक लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर करता है। निरन्तर गति मानव जीवन का वरदान है। व्यक्ति हो अथवा राष्ट्र जो भी एक पड़ाव पर टिक जाता है, उसका जीवन

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

ढलने लगता है। भारतीय-दर्शन का 'चरैवेति-चरैवेति'सिद्धान्त जीवन को निरन्तर गतिमान् रखता है। अतः इसकी धुन जब तक भारतीय संस्कृति के रथ-चक्रों में गूँजती रहेगी तब तक व्यक्ति तथा राष्ट्र में निरन्तर उन्नति होती रहेगी। निरन्तर प्रगति करने तथा प्रगति का मार्ग खुला रखने के लिए आवश्यक यह भी होगा कि नये और पुराने सिद्धान्तों में सुलझा हुआ दृष्टिकोण रखकर उन्हें परस्पर संघर्ष से मुक्त रखा जाए। पूर्व तथा नूतन का जहाँ मेल होता है वहीं उच्च संस्कृति की उपजाऊ भूमि है। ऋग्वेद के पहले सूक्त में ही कहा गया है कि नये और पुराने ऋषि दोनों ही ज्ञान रूपी अग्नि की उपासना करते हैं। यही अमर सत्य है-

**अग्नि पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनेरुत।।7।।**

कालिदास ने भी कहा है-

**पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।।8।।**

अर्थात् जो पुराना है उसे केवल इसी कारण अच्छा नहीं माना जा सकता और जो नया है उसका इसलिए तिरस्कार करना भी उचित नहीं। महाकवि अश्वघोष ने तो यहाँ तक कहा है कि राजा और ऋषियों के उन आदर्श चरित्रों को जिन्हें पिता अपने जीवनकाल में पूरा नहीं कर सके ये उनके पुत्रों ने कर दिखाया-

**राज्ञामृषीणां चरितानि तानि कृतानि पुत्रैरकृतानि पूर्वैः।।9।।**

भारतीय संस्कृति का जो साधना पक्ष है, तप उसका प्राण है - तपोमयं जीवनम्। तप का तात्पर्य है तत्त्व का साक्षात् दर्शन करने का सत्य प्रयत्न - सत्यपरिपालनम्। तप हमारी संस्कृति का मेरुदण्ड है। तप की शक्ति के बिना भारतीय संस्कृति में जो कुछ ज्ञान है वह स्वादहीन रह जाता है। तप से ही यहाँ का चिन्तन सशक्त और रसमय बना है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

अन्त में यह कह सकते हैं कर्म और तप अध्यात्म और दर्शन, धर्म और चरित्र की विशिष्ट उपासना के द्वारा अनन्त सर्वव्यपाक रस-तत्त्व तक पहुँचने की सतत चेष्टा भारतीय संस्कृति में पायी जाती है जिसमें आध्यात्मिकी भावना, कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद, मोक्ष, अहिंसापालन, मातृपितृगुरुभ्क्ति और स्त्री समादर इत्यादि का समावेश रहता है। वर्तमान समय में आवश्यकता है, अपनी संस्कृति में निहित आत्मतत्त्व को पहचान कर उसे आत्मस्थ करने की जिससे भारतीय संस्कृति की जड़ें और भी विस्तार को प्राप्त करें।

## 1.3.3. सांस्कृतिक जीवन मूल्यों का हस्तांतरण

सांस्कृतिक मूल्यों का अधिकार संविधान द्वारा प्रदत्त है। संस्कृति ही व्यक्ति विशेष को पहचान दिलाती है। मानव को मानव बनाने का श्रेय उन सांस्कृतिक मूल्यों को जाता है, जिनके माध्यम से वह अपना जीवन व्यतीत करता है। ये मूल्य ही उसे उच्च से उच्चतर विकास की ओर ले जाते हैं।

एक समूह के सांस्कृतिक मूल्यों को समझना मुश्किल हो सकता है। हालांकि, एक समूह के भीतर, सांस्कृतिक मूल्य केंद्रीय सिद्धांत और आदर्श हैं, जिस पर पूरे समुदाय का गठन होता है। हस्तांतरण के प्रयोग:

**1. बाल्यकाल में विकसित करने होंगे संस्कार:**

हम आज के समय को देखते हैं तो मालूम पड़ता है कि बच्चों में नैतिक मूल्यों की गिरावट आ गई है। बच्चों में बड़ों के प्रति आदर का भाव कम होता जा रहा है। बच्चे स्वभाव से उदंड होते जा रहे हैं, उनमें नैतिक मूल्य व शिष्टाचार तथा संस्कार कहीं खोने लगे हैं। बड़े क्या कहते हैं उसे मानने की बजाय अपनी मनमर्जी कर रहे हैं। सुखद और सभ्य संस्कारों को बाल्यकाल में विकसित किया जा सकता है। बालक मन

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

बड़ा ही कोमल व स्वच्छ होता है। इस अवस्था में जैसे जीवन के मूल्यों को अपनाया या सिखाया जाता है वही व्यक्तित्व के अंग बन जाते हैं। अध्यापक को आदर्श बनकर भावी मानव समाज के निर्माण में सांस्कृतिक मूल्य हस्तांतरित करके रचनात्मक योगदान देना चाहिए।

**2. आधुनिक युग में नैतिक मूल्य क्या हैं हम भूलते जा रहे हैं?**

आधुनिक युग की चकाचौंध और एकल परिवार भी इसका कारण बन रहे हैं। आज की युवा पीढ़ी पश्चिमी सभ्यता की ओर आकर्षित हो रही है। युवा अपनी संस्कृति, संस्कारों, नैतिक मूल्यों और शिष्टाचार को भूल रहे हैं। अपने से बड़ों को नमस्कार करने तथा वृद्धों की सेवा करने वालों की आयु, विद्या, यश और बल बढ़ते हैं। आज बच्चों को नैतिक मूल्यों के बारे में पढ़ाना पड़ रहा है। माता-पिता द्वारा बच्चों को समय न देने के कारण भी अशिष्टता और अनैतिकता बढ़े हैं। इसलिए,माता-पिता को बच्चों पर नजर रखनी चाहिए।

आजकल के बच्चों में नैतिक मूल्य, शिष्टाचार व संस्कार नहीं रहे हैं। आजकल के युवा बड़ों का आदर न कर अपने संस्कार को भूल गए हैं। युवा इन्हें अपनाने की कोशिश भी नहीं करते हैं। माता-पिता, गुरुजनों व बड़ों की आज्ञा का पालन नहीं करते। सही रास्ते को छोड़ गलत रास्ते की ओर जा रहे हैं और गलत कार्यो को अंजाम दे रहे हैं। माता-पिता को भी अपने बच्चों की हरकतों पर नजर रखनी चाहिए। बच्चे के गलती करने पर उसे रोकना चाहिए।

**3. संस्कारों की शिक्षा देकर बच्चों को दें अच्छी संगत :**

हमारे जीवन में शिष्टाचार व नैतिकता का होना अत्यंत आवश्यक है। हमें अपने संस्कार, संस्कृति व नैतिकता को कभी नहीं भूलना चाहिए। संस्कारों से ही हमारी

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

पहचान होती है। पुराने समय में बच्चे अपने माता-पिता व घर में मौजूद अपने बड़ों का आशीर्वाद लेकर ही बाहर निकलते थे। लेकिन आज के बच्चों में यह सब बातें नहीं हैं। बड़ों का आशीर्वाद लेना तो दूर उनका आदर-सम्मान करना भी भूल गए हैं। बच्चों को संस्कार व शिष्टाचार की शिक्षा अपने माता-पिता से ही मिलती है। बच्चों में नैतिक मूल्यों, शिष्टाचार व संस्कारों की शिक्षा देकर उन्हें अच्छी संगत भी सिखाई जा सकती है।

## 1.3.4: संस्कृति में परिवर्तनीय और अपरिवर्तनीय घटक :

सांस्कृतिक मान, प्रथाओं के सामान्यीकृत एवं सुसंगठित समवाय के रूप में स्थिरता की ओर उन्मुख होते हैं, यद्यपि संस्कृति के विभिन्न तत्वों में हस्तांतरण के साथ साथ परिवर्तन की प्रक्रिया शाश्वत चलती रहती है। किसी अवयवविशेष में परिवर्तन, सांस्कृतिक प्रतिमानों के अनुरूप स्वीकरण एवं अस्वीकरण का परिणाम होता है। सांस्कृतिक प्रतिमान स्वयं भी परिवर्तनशील होते हैं। समाज की परिस्थिति में परिवर्तन की शाश्वत प्रक्रिया प्रतिमानों को प्रभावित करती है। सामाजिक विकास की प्रक्रिया सांस्कृतिक प्रतिमानों के परिवर्तन की प्रक्रिया है। संस्कृति प्रकृतिप्रदत्त नहीं होती। यह सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा अर्जित होती है। अत: संस्कृति उन संस्कारों से संबद्ध होती है, जो हमारी वंशपंरपरा तथा सामाजिक विरासत के संरक्षण के साधन है। इनके माध्यम से सामाजिक व्यवहार की विशिष्टताओं का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरण होता है। निगमन के इस नैरंतर्य में ही संस्कृति का अस्तित्व निहित होता है और इसकी संचयी प्रवृत्ति इसके विकास को गति प्रदान करती है, जिससे नवीन आदर्श जन्म लेते हैं। इन आदर्शों द्वारा बाह्य क्रियाओं और मनोवैज्ञानिक

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

दृष्टिकोणों का समानयन होता है तथा सामाजिक संरचना और वैयक्तिक जीवनपद्धति का व्यवस्थापन होता रहता है। संस्कृति के दो पक्ष होते हैं-

(1) आधिभौतिक संस्कृति,

(2) भौतिक संस्कृति।

सामान्य अर्थ में आधिभौतिक संस्कृति को 'संस्कृति' और भौतिक संस्कृति को 'सभ्यता' के नाम से अभिहित किया जाता है। संस्कृति के ये दोनों पक्ष एक दूसरे से भिन्न होते है।

संस्कृति आभ्यंतर है, इसमें परंपरागत चिंतन, कलात्मक अनुभूति, विस्तृत ज्ञान एवं धार्मिक आस्था का समावेश होता है। सभ्यता बाह्य वस्तु है, जिसमें मनुष्य की भौतिक प्रगति में सहायक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और वैज्ञानिक उपलब्धियाँ सम्मिलित होती हैं। संस्कृति हमारे सामजिक जीवनप्रवाह की उद्गमस्थली है और सभ्यता इस प्रवाह में सहायक उपकरण। संस्कृति साध्य है और सभ्यता साधन। संस्कृति सभ्यता की उपयोगिता के मूल्यांकन के लिए प्रतिमान उपस्थित करती है। इन भिन्नताओं के होते हुए भी संस्कृति और सभ्यता एक दूसरे से अंत:संबद्ध हैं और एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। सांस्कृतिक मूल्यों का स्पष्ट प्रभाव सभ्यता की प्रगति की दिशा और स्वरूप पर पड़ता है। इन मूल्यों के अनुरूप जो सभ्यता निर्मित होती है, वही समाज द्वारा गृहीत होती है। सभ्यता की नवीन उपलब्धियाँ भी व्यवहारों, हमारी मान्यताओं या दूसरे शब्दों में हमारी संस्कृति को प्रभावित करती रहती है। समन्वयन की प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है।

संपर्क में आनेवाली भिन्न संस्कृतियाँ भी एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। भिन्न संस्कृतियों का संपर्क उनमें सहयोग अथवा असहयोग की प्रक्रिया की उद्भावना करता

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

है। पर दोनों प्रक्रियाओं का लक्ष्य विषमता को समाप्त कर समता स्थापन ही होता है। सहयोग की स्थिति में व्यवस्थापन तथा आत्मसात्करण समता स्थापन के साधन होते हैं और असहयोग की स्थिति में प्रतिस्पर्धा, विरोध एवं संघर्ष की शक्तियाँ क्रियाशील होती हैं और अंतत: सबल संस्कृति निर्बल संस्कृति को समाप्त कर समता स्थापित करती है।

संस्कृति के भौतिक तथा आधिभौतिक पक्षों का विकास समानांतर नहीं होता। सभ्यता के विकास की गति संस्कृति के विकास की गति से तीव्र होती है। फलस्वरूप सभ्यता विकासक्रम में संस्कृति से आगे निकल जाती है। सभ्यता और संस्कृति के विकास का यह असंतुलन सामाजिक विघटन को जन्म देता है। अत: इस प्रकार प्रादुर्भूत संस्कृति विलबंना द्वारा समाज में उत्पन्न असंतुलन और अव्यवस्था के निराकरण हेतु आधिभौतिक संस्कृति में प्रयत्नपूर्वक सुधार आवश्यक हो जाता है। विश्लेषण, परीक्षण एवं मूल्यांकन द्वारा सभ्यता और संस्कृति का नियमन मानव के भौतिक और आध्यात्मिक अभ्युत्थान के अनुपम सहयोग प्रदान करता है।

संस्कृति यद्यपि किसी देश या कालविशेष की उपज नहीं होती, यह एक शाश्वत प्रक्रिया है, तथापि किसी क्षेत्रविशेष में किसी काल में इसका जो स्वरूप प्रकट होता है उसे एक विशिष्ट नाम से अभिहित किया जाता है। यह अभिधा काल, दर्शन, क्षेत्र, समुदाय अथवा सत्ता से संबद्ध होती है। मध्ययुगीन संस्कृति, भौतिक संस्कृति, पाश्चात्य संस्कृति, हिंदू संस्कृति तथा मुगल संस्कृति आदि की संज्ञाएँ इसी आधार पर प्रदान की गई हैं। विशिष्ट अभिधान संस्कृति के विशिष्ट स्वरूपबोध के साथ इस तथ्य को उद्भासित करता है कि संस्कृति को विशेषण प्रदान करनेवाले कारक द्वारा संस्कृति का सहज स्वरूप अनिवार्यत: प्रभावित हुआ है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

भौतिक संस्कृति के अन्तर्गत उन सभी भौतिक एवं मूर्त वस्तुओं का समावेश होता है जिनका निर्माण मनुष्य के लिए किया है, तथा जिन्हें हम देख एवं छू सकते हैं। भौतिक संस्कृति की संख्या आदिम समाज की तुलना में आधुनिक समाज में अधिक होती है, प्रो.बीयरस्टीड ने भौतिक संस्कृति के समस्त तत्वों को मुख्य 13 वर्गों में विभाजित करके इसे और स्पष्ट करने का प्रयास किया है- i.मशीनें ii.उपकरण iii.बर्तन iv.इमारतें v.सड़कें vi. पुल vii.शिल्प वस्तुऐं viii.कलात्मक वस्तुऐं ix.वस्त्र x.वाहन xi.फर्नीचर xii.खाद्य पदार्थ xiii.औशधियां आदि।

भौतिक संस्कृति की विशेषताएँ:

- भौतिक संस्कृति मूर्त होती है।
- इसमें निरन्तर वृद्धि होती रहती है।
- भौतिक संस्कृति मापी जा सकती है।
- भौतिक संस्कृति में परिवर्तन शीघ्र होता है।
- इसकी उपयोगिता एवं लाभ का मूल्यांकन किया जा सकता है।
- भौतिक संस्कृति में बिना परिवर्तन किये इसे ग्रहण नहीं किया जा सकता है।
- अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने तथा उसे अपनाने में उसके स्वरूप में कोई फर्क नहीं पड़ता। उदाहरण के लिए मोटर गाड़ी, पोशाक तथा कपड़ा इत्यादि।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

## अभौतिक संस्कृति:

अभौतिक संस्कृति के अन्तर्गत उन सभी अभौतिक एवं अमूर्त वस्तुओं का समावेश होता है, जिनके कोई माप-तौल, आकार एवं रंग आदि नहीं होते। अभौतिक संस्कृति समाजीकरण एवं सीखने की प्रक्रिया द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होती रहती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अभौतिक संस्कृति का तात्पर्य संस्कृति के उस पक्ष में होता है, जिसका कोई मूर्त रूप नहीं होता, बल्कि विचारों एवं विश्वासों कि माध्यम से मानव व्यवहार को नियन्त्रित, नियमित एवं प्रभावी करता है। प्रो. बीयरस्टीड ने अभौतिक संस्कृति के अन्तर्गत विचारों और आदर्श नियमों को सर्वाधिक महत्वपूर्ण बताया और कहा, कि विचार अभौतिक संस्कृति के प्रमुख अंग है। विचारों की कोई निश्चित संख्या हो सकती है, फिर भी प्रो. बीयरस्टीड ने विचारों के कुछ समूह प्रस्तुत किये हैं- i.वैज्ञानिक सत्य ii-धार्मिक विश्वास iii.पौराणिक कथाएँ iv.उपाख्यान v.साहित्य vi.अन्ध-विश्वास vii.सूत्र viii.लोकोक्तियाँ आदि।

ये सभी विचार अभौतिक संस्कृति के अंग होते हैं। आदर्श नियमों का सम्बन्ध विचार करने से नहीं, बल्कि व्यवहार करने के तौर-तरीकों से होता है। अर्थात् व्यवहार के उन नियमों या तरीकों को जिन्हें संस्कृति अपना आदर्श मानती है, आदर्श नियम कहा जाता है। प्रो. बीयरस्टीड ने सभी आदर्श नियमों को 14 भागों में बाँटा है- 1.कानून 2.अधिनियम 3.नियम 4.नियमन 5.प्रथाएँ 6.जनरीतियाँ 7. लोकाचार 8.निषेध 9.फैशन 10. संस्कार 11.कर्म-काण्ड 12.अनुश्ठान 13.परिपाटी 14.सदाचार।

### अभौतिक संस्कृति की विशेषताएँ

- अभौतिक संस्कृति अमूर्त होती है।
- इसकी माप करना कठिन है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

- अभौतिक संस्कृति जटिल होती है।
- इसकी उपयोगिता एवं लाभ का मूल्यांकन करना कठिन कार्य है।
- अभौतिक संस्कृति में परिवर्तन बहुत ही धीमी गति से होता है।जो की नही के बराबर हो सकता होता है।इसलिए इसे अपरिवर्तनीय घटक कह सकते हैं।
- अभौतिक संस्कृति को जब एक स्थान से दूसरे स्थान में ग्रहण किया जाता है, तब उसके रूप में थोड़ा-न-थोड़ा परिवर्तन अवश्य होता है।
- अभौतिक संस्कृति मनुष्य के आध्यात्मिक एवं आन्तरिक जीवन से सम्बन्धित होती है।

सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख कारक निम्न प्रकार है: विभिन्न विद्वानों ने सामाजिक परिवर्तन के लिए विभिन्न कारकों को उत्तरदायी बताया है। मार्क्स ने आर्थिक कारकों को, काॅम्टे ने बौद्धिक विकास को, स्पेन्सर ने विभेदीकरण की सार्वभौमिक प्रक्रिया को, मैक्स वेबर ने धर्म को, सोरोकिन ने संस्कृति को, आगर्बन ने सांस्कृतिक पिछड़ेपन या विलम्बन को सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी माना है।

1. प्राकृतिक या भौगोलिक कारक,
2. जैविकीय या प्राणिशास्त्रीय कारक,
3. जनसंख्यात्मक कारक,
4. प्रौद्योगिकीय कारक,
5. मनोवैज्ञानिक कारक,
6. राजनीतिक एवं सैनिक कारक,
7. सांस्कृतिक कारक,
8. आर्थिक कारक,
9. वैचारिक कारक एवं
10. महापुरुषों की भूमिका

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

इन कारकों के कारण सांस्कृतिक मूल्यों में बदलाव आता है।वे भौतिक संस्कृती में याने सभ्यता मे बदलाव लाते हैं।

भौतिक संस्कृति में मानव निर्मित वस्तुएं जैसे उपकरण, औजार, फर्नीचर, ऑटोमोबाइल, पहनावा, भवन, बांध, सड़क, पुल शामिल हैं और वास्तव में, भौतिक पदार्थ जिसे मनुष्य द्वारा परिवर्तित और उपयोग किया गया है। यह बाहरी, यांत्रिक और उपयोगितावादी वस्तुओं से संबंधित है। यही है वे परिवर्तनीय घटक। उदा- फर्नीचर: उठने बैठने के कक्ष में जो फर्नीचर प्राचीन या मध्ययुगीन काल मे था, वह आज नही है। अतिथि के स्वागत के तौर तरीके भी बदल गये हैं।

सामाजिक परिवर्तन के जनसंख्यात्मक कारकों से आप क्या समझते हैं? मोटे तौर पर जनसंख्यात्मक कारक से अभिप्राय जनसंख्या के आकार और घनत्व में वृद्धि तथा ह्रास से है। जनसंख्यात्मक कारकों के अन्तर्गत जनसंख्या के गुणात्मक पक्षों का अध्ययन न करके, उसके सांख्यिकीय पक्षों (जन्म दर, मृत्यु दर, स्त्री-पुरुषों का आयु का अनुपात, आवास की दर, आदि) का अध्ययन किया जाता है। जनसंख्यात्मक कारक यथा – जनसंख्या की रचना, गठन, वितरण, जन्म एवं मृत्यु दर, देशान्तरण, जनसंख्या का वृद्धि तथा ह्रास, जनसंख्या में होने वाले परिवर्तनों तथा उनके प्रभावों, आदि का अध्ययन करने वाला विज्ञान 'जनांकिकी (Demography) कहलाता है। जनसंख्यात्मक कारक सामाजिक-सांस्कृतिक तथ्यों को प्रभावित करते हैं और स्वयं भी उनसे प्रभावित होते हैं।

जनसंख्या का आकार, जनसंख्या की गतिशीलता, जनसंख्या की रचना, जन्म व मृत्यु-दर, आदि का प्रभाव सामाजिक परिवर्तन लाने में सहायक है। भारतीय समाज के संदर्भ में इन सबकी विवेचना निम्नानुसार की जा सकती है –

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

अति जनसंख्या का प्रभाव – अति जनसंख्या का तात्पर्य उस स्थिति से है, जब देश में खाद्यान्न का अभाव है तथा आबादी तीव्र गति से बढ़ रही है। अति जनसंख्या से समाज की संरचना में विभिन्न परिवर्तन होते हैं। समाज में गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी बढ़ती है। जनता का रहन-सहन का स्तर और स्वास्थ्य गिरता है। व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक विघटन को प्रोत्साहन मिलता है।

जन्म-दर तथा मृत्यु-दर का प्रभाव – यदि देश में जन्म-दर घटती है और मृत्यु-दर बढ़ती है, तो उसकी जनसंख्या कम हो जाती है। फलस्वरूप उसमें कार्यशील व्यक्ति की कमी होती है, जिससे देश की आर्थिक स्थिति गिर जाती है। यदि किसी देश या समाज की मृत्यु-दर कम हो रही है तथा जन्मदर बढ़ रही है, तो वह अति जनसंख्या का शिकार हो जाएगा। इस स्थिति में देश का आर्थिक एवं औद्योगिक विकास होगा तथा उसके निवासियों का जीवन स्तर भी ऊँचा होगा। जन्म दर बढ़ने से समाज में विलम्ब विवाह, गर्भ निरोध, गर्भपात, शिशु हत्या, आदि बढ़ते हैं। यदि जन्म-दर कम होती है, तो समाज में ऐसी प्रथाएँ एवं जनरीतियाँ विकसित होती हैं, जिनसे जनसंख्या में वृद्धि हो। स्पष्ट है कि जन्म और मृत्यु दर दोनों ही विभिन्न प्रकार से सामाजिक परिवर्तन में अपना योगदान देती है।

जनसंख्या की बनावट का प्रभाव – जनसंख्या की बनावट या रचना में व्यक्तियों की आयु, लिंग, वैवाहिक स्तर, बच्चों तथा युवाओं का अनुपात, स्त्रियों-पुरुषों का संख्या, आदि को सम्मिलित करते हैं। इनका सामाजिक संगठन व स्वरूप पर काफी प्रभाव पड़ता है। यदि किसी समाज में बच्चों तथा वृद्धों की संख्या अधिक होगी, तो उस देश में युवाओं के अभाव के कारण आर्थिक उत्पादन अधिक नहीं हो पाएगा। यदि समाज में स्त्रियों की संख्या पुरुषों के अनुपात से अधिक होगी, तो वहाँ बहुपत्नी प्रथा और वर-मूल्य प्रथा बढेगी। यदि समाज में पुरुषों की संख्या अधिक होगी, तो बहुपति प्रथा

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

एवं वधू-मूल्य प्रथा का प्रचलन होगा। इस प्रकार जनसंख्या की बनावट भी समाज के सामाजिक, राजनीतिक, पतिक एवं आर्थिक जीवन को प्रभावित करती है।

आप्रवास/देशगमन एवं उत्प्रवास/देशान्तरगमन का प्रभाव – देशागमन या प्रवास (Immigration) का तात्पर्य दूसरे देशों से लोगों को आना और देशान्तरगमन या उत्पवास (Emigration) का अर्थ देश के लोगों का अन्य देशों में जाना है। इन दोनों ही स्थितियों में समाज में विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक परिवर्तन होते हैं। जनसंख्या की बनावट में परिवर्तन होता है तथा समाज में होने वाले समस्त परिवर्तन इससे सम्बन्धित होते हैं। भारत में विभाजन के उपरान्त लाखों की संख्या में शरणार्थी पाकिस्तान से आकर बस गए। फलस्वरूप भारतीयों की सांस्कृतिक विशेषताएँ परिवर्तित हो गई। यूरोप, अफ्रीका और एशिया से अमेरिका में पढ़ने अथवा रोजगार की अच्छी सम्भावनाओं को देखकर प्रतिवर्ष लोग वहाँ आते हैं और फिर वहीं बस जाते हैं।

सामाजिक परिवर्तन के धार्मिक कारकों की विवेचना कीजिए।

धर्म एक प्रकार का विश्वास है, जो लोगों को एक अलौकिक शक्ति से बांधे रखता है। इसकी मूल अवधारणा को आत्म कल्याण की शक्ति के स्पष्ट दर्शन होते हैं। सामाजिक परिवर्तन के एक कारक के रूप में धर्म का एक विशिष्ट स्थान है। भारत एक धर्मप्रधान देश है और विभिन्न धर्मों की एक अनोखी रंगभूमि भी। इसी कारण यहाँ धर्म ने सामाजिक परिवर्तन लाने में योगदान दिया है। वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय प्रगति, औद्योगीकरण तथा शहरीकरण, आधुनिक शिक्षा का प्रसार, सरकारी कानून, धार्मिक आन्दोलन, आदि कारकों के प्रभाव से धार्मिक संस्थाओं में कई परिवर्तन देखे जाते हैं। इन परिवर्तनों से फलस्वरूप सामाजिक जीवन में निम्नलिखित परिवर्तन आए हैं –

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन – स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व सती प्रथा, पर्दा प्रथा, विधवा पुनर्विवाह पर रोक, दहेज प्रथा, आदि कुरीतियों के कारण भारत में स्त्रियों की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। इन सभी कुरीतियों में से अधिकांश को धर्म का समर्थन प्राप्त था। आर्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन जैसी धार्मिक संस्थाओं तथा उनसे सम्बद्ध धर्म सुधारकों ने स्त्रियों से सम्बद्ध इन कुरीतियों का उन्मूलन करने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किए। आर्य समाज ने वैदिक धर्म का पुनरुद्धार किया। आर्य समाज के मन्दिरों में अन्तर्जातीय और विधवा पुनर्विवाह कराए गये। इन संस्थाओं ने स्त्री-शिक्षा पर बल दिया, जिससे स्त्रियों को अपनी दुरावस्था को दूर करने में सहायता मिली। आज स्त्री को 'चरणदासी' नहीं, वरन् 'गृहस्वामिनी' और 'गृहलक्ष्मी' माना जाता है।

अछूतों की स्थिति में परिवर्तन – भारत में धार्मिक कट्टरता दूर करने में समाज तथा धर्म सुधार आन्दोलन का उल्लेखनीय योगदान है। धार्मिक कट्टरता के कम होने के कारण अतीत में जिनको 'अस्पृश्य', 'अन्त्यज', 'हरिजन' माना जाता था, उन्हें अब न वैसा नहीं माना जाता। अछूतों की सभी धार्मिक निर्योग्यताओं को दूर कर दिया गया है। उन्हें पूजा-पाठ तथा मन्दिरों/देवालयों में प्रवेश के अधिकार प्रदान कर दिये गये हैं। आज अछूत भी धार्मिक क्रियाकलापों में भाग लेते हैं। दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी, डा0 भीमराव अम्बेडकर आदि ने अस्पृश्यता का अन्त करने में महत्वपूर्ण साव भूमिका का निर्वाह किया।

धर्म द्वारा धर्म में परिवर्तन – परम्परागत भारतीय धर्म की मुख्य विशेष है – धार्मिक कट्टरता, धार्मिक कर्मकाण्डों की जटिलता और मूर्ति की पूजा। अतः आन्दोलनों के प्रवर्तकों द्वारा सर्वप्रथम इन्हीं विशेषताओं को बदलने का प्रयास किया गया। आर्य समाज और ब्रह्म समाज ने मूर्ति पूजा का निषेध किया । धार्मिक कर्मकाण्डों में

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

अविश्वास जागृत किया। अछूतों को हरि का जन बताकर उनके प्रति कट्टरता की भावना को करने का प्रयास किया। इस संदर्भ में 'सर्व धर्म समभाव' और 'सभी धर्म समान हैं। परिवर्तन वर्तमान समय की सर्वश्रेष्ठ धार्मिक उपलब्धि मानी जाती है, क्योंकि इसी से माना के धर्म तथा धर्मनिरपेक्षता के विचार को विकसित होने में सहायता प्राप्त हुई है

शैक्षिक क्षेत्र में परिवर्तन – भारत में धार्मिक आन्दोलनों के कारण शिक्षा के क्षेत्र में भी कई उल्लेखनीय परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए। आर्य समाज व रामकृष्ण मिशन जैसी धार्मिक संस्थाएँ इस क्षेत्र में विशेष सराहनीय सिद्ध हुई। इन्होंने अविद्या का नाश और विद्या का विस्तार करने के लिए भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विद्यालयों, कॉलेजों एवं महाविद्यालयों को स्थापित किया। इनमें भावी पीढ़ी को अच्छे तरीके से शिक्षित करने की व्यवस्था की गई। है। इन संस्थाओं द्वारा लड़कियों के लिए भी अनेक स्कूल, कॉलेज स्थापित किए गए हैं। इन धार्मिक संस्थाओं में स्त्री-शिक्षा की विशेष व्यवस्था करके परम्परागत रूप से सर्वथा उपेक्षित स्त्रियों की स्थिति को अच्छी दिशा में परिवर्तित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

सामाजिक कुरीतियों में परिवर्तन – आर्य समाज नामक धार्मिक संस्था ने जन्म पर आधारित जाति-पांति सम्बन्धी भेदभाव, दहेज प्रथा, बाल विवाह तथा विधवा पुनर्विवाह का निषेध आदि सामाजिक बराइयों की खुलकर भर्त्सना की तथा उन्हें समाप्त करने का प्रयास भी किया। स्वामी विवेकानन्द जाति-पांति के आधार पर किये जाने वाले भेदभाव और छुआछूत के बड़े निन्दक थे। उनका कहना था कि इससे भारतीय समाज कमजोर हुआ है। उन्होंने बाल विवाह, सती प्रथा, आदि कुरीतियों का विरोध किया। इन सभी प्रयासों के कारण सामाजिक करीतियों की विकराल ज्वाला काफी कुछ शान्त हुई।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

धार्मिक संस्थाओं द्वारा स्थापित अनाथालयों, विधवाश्रमों तथा अस्पतालों में अनगिनत दुखियों, निराश्रितों को सहारा मिला है।

## सारांश

1. परिवार संस्कारयुक्त सुरक्षित रखने के प्रयास आज भी प्रासंगिक हैं। समाज धारणा का केन्द्र परिवार बने।
2. दुनिया की अन्य संस्कृतियों की तुलना में हमें धरोहर के स्वरूप में भारतीय संस्कृति मिली है। गर्व होना चाहिए।
3. माता–पिता, गुरु एवं समाज की सेवा करने में हम लग जायें।
4. परिवर्तनीय जो जो है उसे कठोर निश्चय से चिकित्सा करके जरूर फेंक दें। कुरीतियां, कुरुढ़ियों को पहचानें और सच्चा धर्म जानें।
5. अपरिवर्तनीय घटक विश्व के कल्याणकारी हैं। उसका 'कृति' से प्रचार करें।

## अवधारणात्मक शब्दों का अर्थ (Meaning of Conceptual terms)

- भौतिक संस्कृति - भौतिक संस्कृति के अन्तर्गत उन सभी भौतिक एवं मूर्त वस्तुओं का समावेश होता है जिनका निर्माण मनुष्य के लिए किया है, तथा जिन्हें हम देख एवं छू सकते हैं।
- अभौतिक संस्कृति - अभौतिक संस्कृति का तात्पर्य संस्कृति के उस पक्ष में होता है, जिसका कोई मूर्त रूप नहीं होता, बल्कि विचारों एवं विश्वासों के माध्यम से मानव व्यवहार को नियन्त्रित, नियमित एवं प्रभावी करता है।

## स्व–मूल्यांकन (Self-Assesment)

### दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long answer type questions)

1. संस्कृति के परिवर्तनीय घटकों पर आलेख लिखिए।
2. संस्कृति के अपरिवर्तनीय घटकों को स्पष्ट कीजिए।
3. संस्कृति में संस्कारों के महत्व को रेखांकित कीजिए।
4. जीवन मूल्यों से आप क्या समझते हैं?
5. भारत के सम्मुख सांस्कृतिक चुनौतियों पर आलेख लिखिए।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

### लघु उत्तरीय प्रश्न (Short answer type questions)

1. संस्कार क्या हैं?
2. अपने क्षेत्र में प्रचलित किन्हीं दो संस्कारों को लिखिए।
3. संस्कृति और सभ्यता के अंतर को स्पष्ट कीजिए।
4. किन्हीं दो जीवन मूल्यों को स्पष्ट कीजिए।

### अति लघुउत्तरीय / वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Very short/ Objective type questions)

## प्रदत्त कार्य (Assignment)

- भारतीय संस्कार पद्धति पर एक निबंध लिखना।
- कृषि संस्कृति की विशेषतायें जानकर प्रचार करने के लिये भाषण तैयार करना।
- किसी एक अच्छे संदर्भीय प्रांसगिक, विचार के लिये एक नुक्कड़ नाटक की रचना करें।
- भारतीय तत्वज्ञों की सूची बनाकर जीवनियां पढ़ें।

## संदर्भ (References)

1. युग निर्माण निर्माण योजना – प्रकाशक गायत्री परिवार, हरिद्वार
2. परोपकार (मासिक) – प्रकाशक, आर्यसमाज
3. Principle of Evil - योगी अरविंद
4. काबुलीवाला – रविंद्रनाथ टागोर
5. Anhilation of Cast- Dr. Ambedkar (जातिप्रथा निर्मूलन)
6. जातिप्रथा निर्मूलन – स्वालंत्रयवीर सावरकर

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

## इकाई– 4 सांस्कृतिक जीवन की वर्तमान समस्यायें

**उद्देश्य :–**

इस इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे कि

- आधुनिक पाश्चात्य जीवन पद्धति के गुण तथा दोष।
- उसके विघटनात्मक परिणाम और अंग्रेजों से धोखाधड़ी।
- प्रासंगिक नैतिक मूल्यों की पहचान और देशभक्ति की सही पहचान।
- समाज सुधार की प्राथमिकताएँ क्या हैं? जहाँ जिसका अभाव है, वहाँ उसका प्रभाव है।

## 1.4.1. सामाजिक संस्कारों का क्षरण:

**अ. बदलती पारिवारिक संरचना व संस्कार :**

मनुष्य जीवन हमे मिला हुआ अनमोल उपहार है। इसे व्यर्थ न जाने देनेकी हमेशा नसीहत दी जाती है। अफसोस यह है की, आज की भागदौड भरी जिंदगी मे मनुष्य के लिए नसीहत का कोई मोल नही रहा है। अर्थप्रधान युग में, जीवन पर अर्थ इस कदर हवी हो गया है, कि एक पढा लिखा , शिक्षित, समजदार, स्वावलंबी आदमी, हर तरह ही सुविधा उसे पूर्ण होने के बाद भी संस्कारों से परिपूर्ण नही है। आज इंसान कि तुलना गेंडेसे हो सकती है। जिस तरह उसकी मोटी खाल पर किसी तरह का प्रभाव नही होता है, वो दलदल मे पडा रहता है, उसी तरह इंसान को भी स्वार्थ के दल दल मे रहने की आदत सी हो गई है। आज संतान संस्कारहीन हो गई है, बुजुर्ग आज ऊस परिस्थिती मे आगये हैं, न जी सकते हैं, न मर सकते हैं। बुजुर्गों की जिंदगी को कठीन बना दिया है। मा बाप ने संतान को कभी जीवन में अंगुली पकड कर चलना सिखाया हो, आखिर क्या कारण है कि जब उन्हे सहारे की जरुरत होती है तो पास कोई नही होता है? जिस की हर मांग को मा बाप ने अपनी जरूरतों मे कमी कर पुरा किया। फिर वे

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

बुढापे में क्यू बेगाने हो जाते है? सामाजिक मूल्यों में दिनो दिन आ रहे इस बदलाव के पीछे क्या है कारण है?

भारत में बुजुर्गों के सम्मान की परंपरा रही है। और हम हमेशा इसी बात पर नाज करते रहे हैं की हमारे यहाँ नई पिढी पुरानी पिढी की उपेक्षा नही करती, बल्की उन्हे पूरा सन्मान देती है। और उनके अनुभव की कद्र करती है। लेकिन औद्योगीकरण, उदार अर्थव्यवस्था और पश्चिमी सभ्यता ने कुछ हद तक हमारे संस्कृतीमें सेंध लगा दी है। आज जिंदगी इतनी तेज हो गई है कि इस भागदौड में क्या हो रहा है, किसीको चिंता नही है । कभी समाज की एकता का प्रतिक कहे जाने वाले संयुक्त परिवार टूट रहे है, अब तो एकल परिवार भी नही बचा है। इस स्पर्धा के दौर मे चाहे उसके लिए रिश्ते तोडने पडे, आप जब दोहरा जीवन जीते है तो परंपराये तो टूटेगी ना ? हमारे बुजुर्ग अपनी समझ बूझ से हमारे जीवन को एक सार्थक दिशा देने का मायना रखते है, परंतु आज व्यक्ती अपने मे इतना खो गया है कि उसे अपने बुजूर्गो से मार्गदर्शन प्राप्त करने का समय नही है। वृद्धाश्रम मे बढती संख्या इसका प्रमाण है। दूनिया के किसी भी देश, भाषा, संस्कृती मे भारत को छोडकर बच्चों के उज्वल भविष्य के लिए बडे बुजुर्ग द्वारा " जुग जुग जिओ " का आशीर्वाद नही दिया जाता है। केवल भारत ही एक ऐसा देश है ,जहां इन शब्दों का इस्तेमाल किया जाता है। अब हम समज सकते है की, हमारे यहा बुजुर्ग और बच्चों के बीच का रिश्ता कितना समृद्ध रहा है।

लेकिन आज परिस्थितीयां बदल रही है। बेटा चारदिवारी के अंदर अपने मा बाप से बात नही करता है, लेकिन समाज के सामने दिखाता है की सबसे बढिया आज्ञाकारी पुत्र है । हमारे दोहरे जीवन का सही उदाहरण है। हम घर के बाहर पडोसी के सामने झुक कर नमस्कार तो करते है लेकिन आपने मा बाप की इज्जत नही करते है । लोगोंके व्यक्तिगत व सामाजिक सरोकार अलग अलग हो गये हैं । वृद्धाश्रम मे बढती संख्या इस बात का सबूत है, की वृद्धों को उपेक्षित किया जा रहा है ।हमें

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

समझना होगा समाज के इस अनुभवी स्तंभ को युही नजरअंदाज किया जा रहा तो हम अनुभव से भी दूर हो जायेंगे, जो इनके पास है । भारत को अभी इस की आदत नही। आज दुनिया के सबसे युवा देश में साठ वर्ष के अधिक आयु के लोगो की संख्या तेजी से बढ रही है।

वर्ष 2020 तक देश मे बुजुर्गों की आबादी 17 करोड से भी ज्यादा होने का अनुमान है। वर्तमान में भारत की दस प्रतिशत आबादी बुजुर्गों की है। सात साल बाद भारत-चीन को पीछे छोड़ते हुए दुनिया का सबसे ज्यादा बुजुर्ग की आबादी वाला देश हो जाएगा।भारत मे रोजाना 17 हजार लोक साठ साल के हो जाते है । हमारे देश में ऐसो स्थिती पहिले नही थी। इसने कुछ साल मे तेजी पकडी है । लिहाजा भारत ऐसी स्थिती से पहले रूबरू नही हुआ था । पश्चिमी देशों की बुजुर्गों छठी संख्या पहले से ही जादा रही है। इसलिये वहां के लोगों को इसकी आदत है। अब भारत के सामने जब ऐसी स्थिती आ गई है, तो लोगों को पहली या दूसरी पिढी के बाद इसकी आदत पड जायेगी।खुद पहल करनी होगी। आज भारतीय संस्कार के नाम पर हम दोहरा जीवन भी नही जी रहे है। दोहरे मापदंड बन गये है। विदेशो में तो संस्कार की बात नही होती। वहां तो अधिकांश लोगों को पहले से ही मालूम होता है कि उन्हे रिटायर होने के बाद अकेला रहना है।

यह बदलाव का दौर है । समाज आज जिस तेजी से बदल रहा है, ऐसे मे संस्कारों मे परिवर्तन तो दिखेगा ही। बदलती शिक्षा प्रणालीने काफी असर डाला है ।पहले हम बचपन मे गाय पर निबंध लिखते थे। नैतिक शिक्षा की पढाई पर ज्यादा जोर होता था ।और बुजुर्गो की इज्जत करना सिखाया जाता था। लेकिन आज काफी बदलाव देखने को मिल रहा है। किसी भी कोर्स में नही कहा जाता है, कि आप बुजुर्गों के महत्व के बारे मे लिखे। ऐसे में आज जरूरत है, इसका पहल करते हुए बच्चो को

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

इंसके बारे मे बताये। वैसे भी बच्चे को सबसे पहला ग्यान परिवार से मिलता है । अगर हम अभी भी नही संभलते, तो आनेवाला समय बहुत ही दुःखदायी होगा।

बाजारवादने परिवार को बिखेरा, संस्कार छुट गए हैं।भारतीय समाज की व्यवस्था का आधार है परिवार ।परिवार का केंद्र है उस घर की मा। समाज की व्यवस्था परिवार पर आधारित होती है और उस परिवार मे बचपन से सांस्कृतिक आदर ,संस्कार व शिक्षा की व्यवस्था ,पहिले पांच साल मा के जिम्मे होती है । पांच से आठ की आयु तक पिता शिक्षक होता है। आठ वर्ष के बाद गुरुही शिक्षक होता है ।शुरू से ही, मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथी देवो भव के संस्कार पहिले माँ द्वारा ही दिए जाते है । इस दौर में, बाजारवादी अर्थनीती के कारण परिवार नामक संस्था को बडा झटका लगा है । घर मे मातृशक्ती की अवमानना हुई , तो संस्कार ढीले पडते चले गये । बाजारवाद के कारण उपयोगिता महत्त्वपूर्ण हो गई है और उपयोगिता में आर्थिक पक्षही मजबूत हुआ है। इसके कारण माता पिता का अवमूल्यन हुआ और उन्हे बोझ समझा जाने लगा।

संस्कारों के अभाव मे माता पिता का घर मे जो आदरयुक्त स्थान होता था वह नही रहा। जिसके चलते बाल संस्कार मे भारी कमी आ गई है। संस्कार हीनता की वजेसे उम्रदराज लोगों की घर में इज्जत कम हो गई ।अब अपमान अवहेलना के कारण वृद्धाश्रम की पूछ बढ गयी है। जैसे गाय का स्वाभाविक घर किसान का घर होता है वैसे ही वृद्धों का स्वाभाविक स्थान पौत्र पौत्रियों के बीच घर मे होता है ।अब उपयोगिता न रहने पर वृद्ध माता पिता को वृद्धाश्रम भेजे जाने लगे है । ये समाज की कमजोरी के लक्षण है ।

स्वस्थ परिवार का परिणाम समाजप्रिय होता है।केवल माता पिता नही ,सगे भाई बहन भी दूरी बनाए रख रहे हैं। बाकी रिश्तेदार टूटने लगे है। विविध परिवारों के स्नेहभाव कमजोर होने के कारण समाज दुबला बन रहा है। कुरीतियां,कुरूढियां पनप रही है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

युवा पीढी भटकने से तो समाज के दुबलेपन को मानो बढावा मिल गया है। इसलिये समाज की स्वाभाविक स्थिती प्राप्त करने के लिए उचित संस्कार लाकर, घर का वातावरण, शिक्षा के लिए स्कूल का वातावरण , सुधारना; दोनो निर्णायक रूप से महत्त्वपूर्ण है। विकास की भागदौड, अमीर और बडा बनने की चाह,सरासर नासमझी है।

इसलिये संयुक्त परिवार की व्यवस्था पर बल देना, गृहिणी का सन्मान होना और बाल संगोपन को महत्त्वपूर्ण माना जाना, ये सब समाज के वातावरण को फिर से ठीक करने के लिए आवश्यक तत्व है ।

आज ग्लोबलायझेशन औद्योगिकरण का युग है। इसने शिक्षा पर सबसे जादा प्रभाव डाला है। नैतिक शिक्षा की पढाई से बच्चे दूर गये है, जिस का असर इन के संस्कारो कै उपर पडा है। हिंदी मिडीयम हो या अंग्रेजी, सभी में, नैतिक शिक्षा आवश्यक है। भारत अपने जिन मूल्यों के लिए पूरे विश्व में पहचाना जाता है, वह अतीत की बात न बन जाय। शिक्षा मे इन सब बातो के अभाव के साथ, हमारे देश में परिवार मे होनेवाला संस्कारों का क्षरण व सामाजिक जीवन मूल्यनिष्ठा विरहित आचरण, यह समाज जीवन मे दो बहुत बडी समस्या उत्पन्न करने के लिए कारण बनता है।

पिछले कुछ समय से देश मे हिंसा की घटनाएं ही तेजी से बढी है । कश्मीर से कन्याकुमारी तक हररोज घट रही ही घटनाएं है,विश्वगुरू भारत को शर्मसार कर रही है। विश्वगुरू की उपाधि से मेरा भारत, आज किस प्रकार की घटनाओंसे कलंकित हो रहा है। हमारी पूर्वजो ने भारत का सपना देखा था। उसमें हिंसा, बलात्कार की घटनाओंके लिए कोई स्थान नही था। देश को शर्मसार करने वाली घटनाओं के, कारणोंपर अंकुश लगाये बिना,इन्हे रोकना मुश्कील ही नही, नामुमकीन है। जिस देश या राज्य मे, परिवारिक ,सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन, मानवीय मूल्योंसे युक्त हो,परिवार एवं समाज नई पीढी के लिए संस्कारों का स्रोत हो,वहां ऐसे धिनोने कार्य के लिए कोई स्थान नही होता। आज विश्व ऐसे दोराहे पर खडा है। जहाॅ अमानवीय

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

वैज्ञानिक उन्नती के कारण मानवीय मूल्यों का पतन हो रहा है ।भारत जैसे देश के लिए सबसे अधिक चिंता का विषय है, क्योंकि संपूर्ण विश्व के मानव को दीक्षा देने वाले देश मे हिंसाचार बलात्कार की घटनाएं देश की आत्मा को झकझोर रही है। ये घटनायें अचानक नही हो रही है बल्कि यह तो पिछले एक दशक से परिवारिक एवं सामाजिक जीवन पतन का परिणाम है। इन घटनाओं के के लिये हमारी विखंडित, स्वार्थपूर्ण वर्तमान पारिवारिक तथा सामाजिक व्यवस्था है। पहले इस प्रकार की घटना ही नही होती थी। क्योंकि हमारी पारिवारिक और सामाजिक संस्कृती मजबुत थी। लोगों को परिवार तथा समाज का डर एवं शर्म थी, जो की आज खतम हो रही है । आज की शिक्षा, शिक्षा नही, केवल साक्षरता व सूचना मात्र रह गयी है। क्योंकि शिक्षा तो मानव बनाती है, हैवान नही ।शिक्षा का मूल केंद्र तो घर परिवार एवं समाज है। वहीं से हम अहिंसा, मानवता, सहिष्णुता, नारी सम्मान, राष्ट्रप्रेम आदि भाव सिखते है ।आज परिवार टूट चुके है और समाज विखंडित हो चुका है। तभी तो देश में इस प्रकार की घटनाये घट रही है। आज परिवार मे माता पिता, दादा-दादी केवल पैसे की मशीन मात्र बनने जा रहे हैं। वे अपने आपको इतना मजबुर समजते है कि, अपने बच्चो को मूल्यों की शिक्षा देने में असफल हो गये है । यदि घर के बडे लोग गलत कानून या किसी अन्य मजबुरी के कारण अपने ही घर मे विवश हो, तो इस प्रकार की घटनाऐं स्वाभाविक है। जब से परिवार मे माता ने गांधारी की तरह पट्टी बांधी है तथा पिता धृतराष्ट्र बने बैठे है, तभी से हिंसा व बलात्कार की घटना मे हो रही है। शहरीकरण की होड ने सामाजिक जीवन को तहस नहस कर दिया है ।

जहा सामाजिक जीवन समृद्ध हो वहां ऐसी घटनाएं नही हो सकती ।इकलौता वारिस अपनी माँगों को पूरा करने के लिए इमोशनल ब्लॅकमेल कर रहा है। हम अपने बच्चो को तिन के से भी ज्यादा नाजूक बना रहे है ।हम ही उनको पारिवारिक, सामाजिक कार्य से दूर रख रहे है जब है।जब उन्हे परिवार की कोई जिम्मेदारी ही नही होगी, न ही किसी प्रकार का भय तथा शर्म होगी, फिर तो देश मे ऐसे घटनाओं को रोकना,

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

मुमकीन नही है ।इसी कारण हम आपने संस्कृती तथा संस्कारों को स्थानांतरित करने में, पूर्णतः असफल हो रहे है।

इसमे उन देशद्रोही, समाजद्रोही, नारीद्रोही के साथ साथ माता-पिता तथा समाज बराबर का दोषी है। हमने अपने बच्चों को, संयुक्त परिवार एवं समाज से दूर करके, उनको निर्जीव मोबाईल का दोस्त बना दिया है । आज हम अपना अधिकांश मे व्हाट्सअप, फेसबुक पर ही बिता रहे है। इंटरनेट के माध्यम से अवांछनीय साइट्स खोलकर उनसे हिंसा तथा बलात्कार करवा रहे है ।

कानून अकेला हिंसा और बलात्कार की घटनाओं को नही रोक सकता। इसके लिए समाज को मिलकर प्रयास करने पडेंगे। इसके लिए कानून के रखवालोंने , माता पिता, समाज एवं शिक्षक के पैरो मे बेडियां नही डालनी चाहिये । पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन को मजबूत करने के लिए मिल कर प्रयास किया जाय। संस्कारों को पुन्हा जीवित किया जाये तो हिंसा तो , बलात्कार की शर्मनाक घटनाए, अपने आप कम हो जायेंगी। देश की आम जनता हिंसा का शिकार नही होगी ,न ही देश की शान मात्र स्वरूपा बेटीया असुरक्षित रहेगी । इसके लिए सबसे पहले माता पिता को शुरुवात करनी होगी ।अपने बच्चो को पारिवारिक सामाजिक तथा राष्ट्रीय शिक्षा देनी होगी ।समाज को भी सदैव सजग रहना होगा। यदि परिवार और समाज एकजूट करेंगे तो सरकार को कठोर कानून बनाने की आवश्यकताही नही पडेगी। हमारा एक किनारा होना चाहिये।

**देश होगा तभी आबाद। यदि सशक्त होगा, परिवार और समाज।**

## 1.4.2. सामाजिक विघटन का अर्थ:

सामाजिक विघटन का अर्थ सामाजिक विघटन के नाम से सपष्ट हो जाता है। सामाजिक विघटन का अर्थ है, सामाजिक संघटन के विपरीत दशा है। हम जानते है की हमारे समाज का निर्माण भिन्न व्यक्ती, संस्था व समुह, समितियो , प्रतिमानो

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

आदि से मिलकर होता है। और इन सबका समाज मे एक पद या स्थिती होती है ।जब यह सभी अपने पदो और स्थिती के अनुसार अपने अपने कार्य को सही से नही करते तो समाज का विघटन होने लगता है ।जब किसी समाज मे सामाजिक इकाइयों के बीच, प्रकार्यात्मक संबंध टूट जाते है, समूह के स्वीकृत कार्यों को करने में बाधा पडने लगती है, अथवा सामाजिक नियंत्रण प्रभावी कार्य नही कर पाता, तो उसे सामाजिक विघटन की स्थिति कहते है। सामाजिक विघटन के अर्थ को, और भी समझने के लिए, मान लिजिये की आप का शरीर समाज है, जिसके अंग है जैसे हात नाक आदि। अगर आप के शरीर का कोई अंग अपना काम ना करे वा खराब हो जाये तो आप के शरीर को कष्ट होने लगेगा या वह शरीर धीरे धीरे नष्ट होने लगेगा। उसी तरह, हमारे समाज का निर्माण अनेक इकाइयों से मिलकर होता है और जब वह इकाइयां अपना कार्य नही करती तो समाज का विघटन होने लगता है। वास्तविकता में ,समाज में संघटन का ना रहना ही सामाजिक विघटन है।

सामाजिक विघटन के बारेमे थॉमस तथा जननकी ने लिखा है की, "सामाजिक विघटन कोई एक अलौकिक घटना नही है, जो की किन्ही कालों तथा किसी समाज तक सीमित हो। इस मे से कुछ हमेशा और प्रत्येक स्थान पर सामाजिक नियम भंग करने के व्यक्तिगत घटनाएं होती है, जो सामाजिक संस्थाओं पर विघटित करनेवाला प्रभाव डालते है। और यदि उनका प्रतीकरणं न किया जाये तो बढ सकती है और और सामाजिक संस्थाओंका पूर्ण नाश कर सकती है।

## सामाजिक विघटन की परिभाषा:

1. सामाजिक नियंत्रण के समाप्त हो जाने से सामाजिक विघटन पैदा हो जाता है जिसे समाज में व्यवस्था वर गडबडी उत्पन्न हो जाती है ।
2. सामाजिक विघटन मे, एक समूह मे के सदस्यों के आपसी संबंध टूट से लगते है या समाप्त हो जाते है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

3. सामाजिक नियंत्रण की व्यवस्था का भंग होना और उनमे विचलन की स्थिती उत्पन्न करना ही सामाजिक विघटन है ।

4. जब संस्कृती के विभिन्न अंगो के बीच संबंधो की एकता भंग हो जाती है, तो सामाजिक विघटन होता है।

## सामाजिक विघटन के स्वरूप:

1. **वैयक्तिक विघटन :** जब समाज मे व्यक्ती समाज स्वीकृत व्यवहार मानकों से हटकर कार्य करने लगता है एवंम परिवर्तित परिस्थितियों मे अनुकूलन नही कर पाता तो विघटन की प्रक्रिया जन्म लेती है। वैयक्तिक विघटन समाज में कईं रूपों मे अभिव्यक्त होता है। जैसे: मद्यपान, मादक द्रव्य सेवन, व्यसनाधीनता, अपराध, वेश्यावृत्ति, आत्महत्या आदी।

2. **पारिवारिक विघटन :** परिवार के सदस्य मे एकमत न रहना , परिवार मे सामंजस्य की प्रक्रिया को कम कर देता है। परिवार के सदस्यों के बीच का भावपूर्ण नियंत्रण की कमी पारिवारिक विघटन का कारण बनती है, क्योंकि नियंत्रण के अभाव में अनुशासनहीनता बनती है । पारिवारिक विघटन की स्थिति, पति पत्नी के बीच संबंध विच्छेद, बच्चो मे अनुशासनहीनता एवंम पारिवारिक कलह के रूप मे देखने मे मिलती है । आर्थिक संकट, मतभेद ,असाध्य और आकस्मिक कारण पारिवारिक विघटन के लिए जिम्मेदार होते है।

3. **सामुदायिक विघटन :** जब समुदाय के अंतर्गत इस तरह की समस्याएं विकसित होने लगे की समस्याओं की वजहसे, सामुदायिक जीवन चुनौतीपूर्ण हो जाये, तब सामुदायिक विघटन की प्रक्रिया जन्म लेती है।सामुदायिक विघटन की स्थिति तब भी आती है जब समुदाय के अंदर अनेक संस्थाए अपने कायदेकानू के आधार पर कार्य न कर रही हो और संस्थओ मे संघर्ष चल रहा हो । संस्थाए अपने कार्य अन्य संस्थाओं को हस्तांतरित कर रही हो, लोग रिश्वत ले रहे हो, नफेखोरी बढ

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

रही हो, बेरोजगारी बढ रही हो, गरिबी फैल रही हो, अत्याचार बढ रहा हो, पुराने कायदे कानून और नये कायदों मे सामंजस्य न रहा हा हो।

## सामाजिक विघटन के कारण :

1. **जनसंख्या का स्थानांतरण :** जनसंख्या का स्थानांतरण सामाजिक विघटन का एक मुख्य कारण है। जहां पर व्यक्ती अपने समुदाय से बाहर नही आते जाते है ,वहां पर सामाजिक विघटन की संभावना नही होती। वे अपने समुदाय के रीतीरिवाज का पालन करते रहते है किन्तु आवागमन के साधनो की सुविधा के कारण जो व्यक्ती अपना स्थान बदलते रहते है, एक स्थायी समूह के संपर्क में नही रहते । परिणाम स्वरूप उन्हे रीतीरिवाजों के प्रति श्रद्धा नही होती। परिणामस्वरूप उल्लंघन करते रहते है तथा सामाजिक विघटन की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है।

2. **नागरीकरण :** औद्योगिक विकास के कारण नगरों का भी तीव्र गतीसे विकास होता है ।आज छोटे-छोटे नगर बडे नगर मे विकसित हो गये है । तथा गावों का स्थान छोटे-छोटे नगर लेते जा रहे है। उनके विकास की प्रक्रिया को समाजशास्त्र मे नागरीकरण के नाम से पुकारा जाता है।जहां नगर की विशेषता सामाजिक विषमता है, वहा ग्राम की विशेषता सामाजिक समानता है। नगरो मे अनेक धर्म जाती व संस्कृती के लोग निवास करते है ।वह परस्पर एकता के सूत्र मे नही बंध पाते ।और उन में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से संघर्ष चलते रहते है। यही आपसी संघर्ष सामाजिक विघटन को जन्म देते है।

3. **तीव्र सांस्कृतिक परिवर्तन :** सांस्कृतिक परिवर्तन दो प्रकार से होता है । हो सकता है, प्रथम एक संस्कृती के व्यक्तियों के दूसरे संस्कृती के संपर्क मे आने से और द्वितीय संचार के साधनो द्वारा संस्कृती के साथ स्थानांतरित होने से दोनो प्रकार के सांस्कृतिक परिवर्तन मे व्यक्ती व समूह के बीच अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है ।इस प्रकार के सांस्कृतिक परिवर्तन मे व्यक्ति द्वारा संस्कृती के

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

स्थानांतरित होने से दोनो प्रकार के सांस्कृतिक परिवर्तन मे व्यक्ती व समूह के बीच अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है । इस प्रकार के सांस्कृतिक परिवर्तन, यंत्र के आविष्कारोंके कारण हो जाते है ।जैसा की, भारत में रेल तथा मोटर चलने से बहुत से लोगो को अपने आदतों में परिवर्तन करना पडता है। खाने पीने पूजापाठ आदि के नियम तथा मशीनों के आविष्कार के कारण लोगोंके व्यवसाय के उपर भारी प्रभाव पडा । यातायात के साधनो ने भी पुरानी रुढी, रितीरीवाज पर विशेष प्रभाव डाला है । जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक विघटन की प्रक्रिया आरंभ हो गई है।

4. **धर्म निरपेक्षता :** यद्यपि धर्मनिरपेक्षता प्रत्येक प्रजातंत्र राज्य का आवश्यक गुण होना चाहिये इससे राजनैतिक एकता व व्यक्तिगत स्वतंत्रता की स्थापना होती है किन्तु साथ ही साथ धर्मनिरपेक्षता ठीक ठीक ना हो,सब धर्मो को समान न देखा जाय और न्यायपूर्ण ना हो, तो ऐसी व्यवस्था समाज के विभिन्न वर्गो मे संघर्ष को जन्म देती है। जिससे सहयोग का अंत व विघटन आरंभ होता है।

5. **सहयोग और एकता की भावना का नष्ट होना :** सभी व्यक्ती एक के लिए और एक व्यक्ती सभी के लिये, यह भावना दिन प्रतिदिन क्षीण होती जा रही है । गाव के व्यक्तियों के झुंड, सामूहिक पूजा, मेले,हाट,नृत्य आदि कार्य मे भाग लेते थे। के सभी कार्य पारंपारिक सहयोग पर निर्भर करते थे।

6. **जातिवाद :** जातिवाद के दो रूप हमारे समूह मे उभर रहे है।

**प्रथम :** औद्योगीकरण के प्रभाव से जातिवाद समाप्त हो जा रहा है। आज विभिन्न जाती के व्यक्ती एक साथ कार्य करते है, एक हॉटेल में बैठकर भोजन करते है, एकही स्थान पर बैठकर मनोरंजन करते है।

**द्वितीय :** जाती के अनुसार गुट बंदी होती जा रही है। पिछडी जातीयोंमे चेतना आनेसे उन्होंने अपने अधिकार को प्राप्त करने के लिए अपना गुट बना लिया है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

उसी तरह समाज में लगभग सभी जातियों के गुट बनने लगे है ।इसका परिणाम यह हुआ कि एक जाती दुसरी जाती की आलोचना करने लगी है। इससे कभी कभी संघर्ष, ईर्षा प्रकटती है।यह सभी चीजे समाज के कार्य मे गतिरोधक उत्पन्न करती है।

7. **वर्गों का संघर्ष :** जहा जाती प्रथा समाप्त हो रही है ,वहां वर्ग वाद मे वृद्धी हो रही है । नगरो में विभिन्न व्यवसाय कार्य करनेवालो का अपना संघटन बन रहा है। संघटन मे जातिगत बंधन नही है। वर्ग निर्मित संघटन अपने वर्ग के व्यक्तियों के हितों की रक्षा के लिए निरंतर संघर्ष करते है। नगर और नगर के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार के वर्ग होते है। जैसे डॉक्टर, अध्यापक, श्रमिक, पूंजीपती, इंजिनियर आदि सभी वर्ग अपने अधिकारों की मांग के लिये संघर्ष कर रहे है । इसलिये हडताल, ताले बंदी, जुलूस, काम रोको, जेल भरो आदि कार्य करते है। इससे नगर मे अशांती और अव्यवस्था उत्पन्न होती है।

8. **बेरोजगारी :** यह समाज का बहुत बडा रोग है ।भारतीय समाज मे शिक्षित-अशिक्षित, कुशल-अकुशल, श्रमिक से लेकर डॉक्टर इंजिनियर तक के क्षेत्र मे बेकारी है। कहावत है, " खाली मस्तिष्क शैतान का घर "। इतनी बडी संख्या मे बेकारी जिस देश मे होगी, वो देश संघटित रूप से कार्य कैसे कर सकता है? आखिर व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिये ।और न होने पर वह असामाजिक कार्य को करके पूर्ण करता है ।सत्य यह है की जिस देश मे बेरोजगारी जितनी बढेगी, तीव्रता से भ्रष्टाचार, अपराध, विभिन्न प्रकार के आंदोलन, हडताल, तोडफोड की क्रियायें, हिंसात्मक कार्य दलबंदी क्रियाएं पनपेगी। यह विघटन उत्पन्न करती है।

## सामाजिक विघटन के लक्षण:

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

समाज मे विघटन आरंभ होने से पूर्व विघटन के लक्षण दिखाई देने लगते है ।जैसे किसी रोगी को समझने के लिए उसके लक्षण जाना जरूरी होता है उसी प्रकार सामाजिक विघटन के लक्षण ज्ञात करना आवश्यक हैं। सामाजिक विघटन के निम्न लक्षण है।कुछ अच्छे लक्षणों की चर्चा नीचे दियी है। अच्छा बुरा सापेक्ष है।किस दिशा मे जाना है, यह नेता निर्णय करते रहते है।

1. **रूढियों और संस्थाओं मे संघर्ष :** सामाजिक ढांचे मे रूढियो और संस्थाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यह भूमिका सामाजिक संघटन को बनाए रखती है । सहयोगात्मक संघटित समाज की रूढियां अनेक संस्थाओं को एक स्वस्थ नैतिक बंधन मे बांधी रखती है । और संस्थाओं के मध्यमें संतुलन बनाये रखती है। जिससे परिवार, पडोस, स्कूल, मंदिर, सरकार, धर्म ,आर्थिक संस्था इत्यादी। उनमें जब परस्पर सामंजस्य नही रह जाता, तो सामाजिक विघटन की गति तीव्रता से होने लगती है। संस्थाओ में नव नवीन संस्था प्राचीन बातों और महत्त्व को लेकर संघर्ष होने लगते है तो विभिन्न संस्थाओं के मध्य सहयोग की भावना ही नष्ट नहीं होती, बल्कि उनके मध्य संघर्ष की भावना उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए भारत मे जाति प्रथा, विवाह संबंधित रूढियों में आश्चर्य जनक परिवर्तन हो रहा है। उससे संबंधित अनेक रूढियां समाप्त होती जा रही है। वे केवल समाप्त नही हो रही, बल्की नये संस्थाओं का जन्म भी हो रहा है । नवीन संस्था नवीन मूल्य उत्पन्न कर रही है। समाज मे प्राचीन और नवीन मे संघर्ष हो रहा है। इस संस्था संघर्ष ने समाज मे परिवर्तन की कोई निश्चित दिशा निर्धारीत नही की है। निकट भविष्य मे कोई पडाव नजर नही आता है।

2. **एक समूह के कार्यों का हस्तांतरण:** भारतीय समाज मे अधिकांश कार्य परिवार तथा धार्मिक संस्थान के माध्यम से किये जाते है । किन्तु आधुनिक भारत में अनेक कार्य जो परिवार व धार्मिक संस्थान के द्वारा पूर्ण होते थे, वे आज अन्य

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

समूह तथा संस्था के द्वारा होते है, जैसे पहले बच्चो का पालन, पोषण, शिक्षा, दीक्षा ,परिवार मे होती थी किन्तु आज बच्चों के अनेक गृह है ,जहां बच्चे पाले जाते है। शिक्षा के लिए स्कूल खुल खुल गये है, इतना ही नही भोजन बनाने का कार्य परिवार से होटल को हस्तांतरित हो गया है । विवाह का कार्य धार्मिक संस्थान से निकल कर कचहरी और कानून की सीमाओं मे पहुंच गया है ।

3. **वैयक्तिक भेद तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता :** व्यक्ती जब अपने आवश्यकताओं , रुझानों हितों को, अन्य व्यक्तियों की तुलना मे प्राथमिकता देने लगता है और बिना किसी की परवाह किये , चिंता किये हुए अपने आवश्यकताओ अथवा रुचियों को पूर्ण करना चाहता है तो सामाजिक विघटन होता है।

4. **सामाजिक ढांचे मे परिवर्तन :** प्रत्येक समाज मे लिंग ,जाती ,पारिवारिक संबंध, देश तथा स्थान के अनुसार व्यक्तियों की स्थिति और कार्य निश्चित होते है। प्रत्येक व्यक्ती , चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष, अपनी जाती-धर्म आदि के द्वारा कार्य करते है, तब समाज संघटित रुपसे कार्य करता रहता है। किन्तु जब व्यक्तियों की स्थिति और कार्य मे परिवर्तन होने लगते है, तब समाज मे परिवर्तन प्रारंभ होता है। आधुनिक भारत मे स्त्री का कार्यक्षेत्र केवल परिवार ही नही रहा।वह अनेक क्षेत्रों मे कार्य करती है, इसी तरह किसी भी जाती का पुरुष, जूते की दुकान खोलकर या धोबी का कार्य लाॅड्री खोलकर कर सकता है। इस प्रकार जब समाज की संरचना में तेजी से परिवर्तन होना आरंभ होता है तब सामाजिक ढांचे मे परिवर्तन होने लगता है।

5. **सामाजिक मूल्यों मे परिवर्तन** : प्रत्येक समाज के अपने मूल्य है ।यह मूल्य विभिन्न प्रकार की रुढी परंपरा व विश्वासू से जुडे है ।इन मूल्य मे जब परिवर्तन होना आरंभ होता है तब सामाजिक विघटन होता है उदाहरण के लिए संयुक्त परिवार मे अनेक मूल्य जुडे हुए है सामाजिक सुरक्षा सहयोग पूर्ण जीवन

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

सहिष्णुता प्रेम लगाव इत्यादी मूल्य संयुक्त परिवार कोजिवित रखा है किन्तु आज अमूल्य परिवर्तित होते जा रहे है यह सामाजिक विघटन के लक्षण है।

## 1.4.3. नैतिक मूल्य क्या है ?

सच्चाई, इमानदारी, प्रेम, दयालुता, मैत्री आदि को नैतिक मूल्य कहा जाता है ।सच्चाई को स्वतः साध्य मूल्य कहा जाता है ।अपने आप में ही मूल्यपूर्ण है ।इसका प्रयोग साधन की बात की नही किया जाता , बल्कि यह स्वतः साध्य है । सभी विवादो मे भी सत्य के अन्वेषण का प्रयास किया जाता है।

वर्तमान समय में नैतिक मूल्यों की कमी:

आज हम जी रहे है उसे कलियुग कहते है। कलिकाल मे प्रत्येक दिशा क्षेत्र में परिवर्तन अवश्यंभावी है। जीवनशैली, विचार, रहन सहन आदि के स्तर मे परिवर्तन चुका है। यहा तक की सामाजिक मूल्यों का परिवर्तन हो चुका है। यह परिवर्तन यहां तक हो चुका है कि नैतिक मूल्य विलुप्त होने की कगार पर है । नैतिक मूल्य के अवमूल्यन के कारण ही आज हम समाज मे भ्रष्टाचार, अनैतिक आचरण, महिलाओं में और बालिकाओं के साथ दुर्व्यवहार की घटनाएं दिख रही है। इन सब घटनाओं के मूल कारण की और ध्यान दे, तो पता चलता है कि वर्तमान परिदृश्य मे परिवार समाज मे नैतिक्ता का अभावही प्रमुख कारण है।

पाठ्यक्रम मे नैतिक शिक्षा एक विषय के रूप मे पढाया जाता था। सदाचार की शिक्षा दियी जाती थी। किन्तु आधुनिक और वैज्ञानिक बनने की होड में, नैनिहालों को नैतिक मूल्य से दूर कर दिया। बच्चे अपने नैतिक मूल्यों के प्रति विमुख होते गये। मात्र पश्चिम के अंधानुकरणने उनका बचपन छीन लिया गया। पाठ्यक्रम से नैतिक शिक्षा हटाली गई है। यदि है, तो केवळ खानापूर्ती के लिये।पिछले दस वर्षो मे जो पीढी तयार हुई है उसने" मैं और मेरा कर दिया।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

जॉर्ज बर्नार्ड शॉ, रवींद्रनाथ टागोर, जेम्स वॉट बाल्यावस्था में बुद्धिमान नही थे । और आगे चल कर उन्होने नाम कमाया ।यदि बच्चों को गलत शिक्षा या प्रशिक्षण प्राप्त होगा तो उसका भविष्य नष्ट हो जायेगा। बच्चे नकल करते है। इसलिये उचित मार्गदर्शन व नैतिक मूल्य से परिचित कराया जाना चाहिए। बडों का, हम शिक्षकों का कर्तव्य है कि अपना आचरण शुद्ध करे। हो सकता है, की नही बताने के कारण कभी-कभी मनुष्य को असफलता का सामना करना पडता है। इसलिये हतोत्साहित न हो के बार-बार प्रयास करना चाहिये। असफलता ही अनुभव प्रदान करती है ।और अनुभव बुद्धिमान बनाता है। सफलता नैतिकता के रथपर चढ कर प्राप्त की जा सकती है । नैतिक मूल्यों का दामन नही छोडना चाहिये । नैतिक्ता से ओतप्रोत व्यक्ती निस्वार्थ होता है ।बच्चों को बताना होगा की नैतिकता से कुछ कठिनाई आ सकती है ,परंतु उसका धैर्यपूर्वक पूर्वक सामना करना चाहिये । तभी राष्ट्र व समाज की उन्नती संभव है।

प्राचीनकाल में पाठशालाओं में धार्मिक, नैतिक शिक्षा, पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग थे। अंग्रेजो ने भारतीय शिक्षा नीति को धार्मिक तथा नैतिक शिक्षासे बिलकुल अलग रखा। उन्होने राज्य द्वारा संचालित विद्यालयओं मे इस शिक्षा को पूर्ण रूप से बंद करके धार्मिक तटस्थता की नितिका अनुसरण किया। स्वतंत्र भारत मे भी देश को धर्मनिरपेक्ष घोषित कर दिया गया । राजकोष से चलाई जाने वाली किसी भी संस्था मे किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा नही दी जायेगी । हर्बर्ट के नुसार नैतिक शिक्षा , शिक्षा से प्रथक नही है ।जहां तक नैतिकता धर्म का अर्थ है ,इन दोनों का अस्तित्व एक दुसरे पद निर्भर है । इस बात को किस प्रकार कहा जा सकता है , कि धर्म के बिना नैतिकता का और नैतिकता बिना धर्म का अस्तित्व नही है।

किसी भी व्यक्ति में नैतिक मूल्यों का होना ही धर्म है , नैतिक मूल्यों की अनुरूप आचरण ही उसे चरित्रवान बनाता है। दुसरे शब्दों मे नैतिक मूल्यों का पालन ही

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

सदाचार है। सदाचार व्यक्ति को देवत्व की ओर ले जाता है ।और दुराचार से पशु बना देता है। राम ,कृष्ण, गौतम बुद्ध ,महावीर वर्धमान , विवेकानंद साक्षात ईश्वर माने जाते है । क्यूंकि इनके कर्म नैतिक मूल्यों के अनुरूप थे। उनमे चरित्र बल था, सच्चरित्रता थी। नैतिक मूल्यों- सत्य प्रियता, त्याग ,उदारता ,विनम्रता ,करुणा , ह्रदय की सरलता, अभिमान हीनता के बारे मे सभी को पता है, पर इन मुल्यों के अनुरूप आचरण करनेवाले या , ये कहे कि, अपने जीवन मे इसे उतारने वाले व्यक्तियों की संख्या में तेजी से गिरावट आ रही है।

आज का व्यक्ति अहंकारी होता जा रहा है। उसका चंचल मन जो कहता है ,उसी के अनुरूप आचरण करना ही, उसे सही लगने लगा है । नैतिक मूल्यों के मूल में परहित (दूसरों का भला करना ) का भाव आवश्यक है। तुलसिदास जी ने भी कहा है ,

**"परहित सरिस धरम नही भाई "।**

हमारे आधुनिक समाज मे इस भाव की कमी होती जा रही है। सदाचार की जगह औपचारिकता लेती जा रही है ।हर व्यक्ति भौतिक सुख संसाधन से सच्चा सुख पाना चाहता है, जिसके लिए सही या गलत तरीके से ज्यादा से ज्यादा रुपये कमाना चाहता है। अपना जो समय उसे घर परिवार समाज को देना चाहिये , वह रुपयों के पिछे भागने मे गंवा देता है । सोशल मीडिया के हमारे जीवन में दखल ने दूर के लोगो को तो पास ला दिया है,पर परिवार समाज से दूर कर दिया है। अधिकांश लोगों का कीमती समय यहां व्यतीत होता है।

मन की शांति के लिए धर्म के रास्ते पर चलना होगा। और सदाचार से ही यह असंभव है। आज व्यक्ती की मानसिकता मे परिवर्तन सही दिशा की तरफ कम और गलत दिशा की तरफ जादा हो रहा है । इसी किसी का परिणाम है, की हमारे समाज का स्वरूप तेजी से परिवर्तित हो रहा है। मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने व्यक्ती के

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

समाजीकरण के बारे मे कहा है कि ,"व्यक्ती की व्यवहार का अधिकांश भाग अनदेखा, अचेतन शक्तियो द्वारा संचालित होता है।

हर इंसान के भीतर सही गलत का निर्णय करने के लिए अंतरात्मा है ,जिसकी आवाज ह मे सही और गलत का अंतर बताती है ।और यह भी बताती है कि कौन सा कार्य सही है, और कौन करना चाहिए और क्या नही करना चाहिए ।अगर हम सभी अपने अंतरात्मा की आवाज के अनुरूप आचरण करे तो नैतिक मूल्यों की उपेक्षा कभी नही करेंगे।

व्यक्ति के व्यक्तित्व की सर्वांगीण विकास का मुख्य उत्तरदायित्व परिवार और विद्यालय पर होता है ।और उत्तरदायित्व तभी पुरा किया जा सकता है जब उसे धार्मिक, नैतिक शिक्षा प्रदान करे। शिक्षा आयोग के शब्दों मे," विद्यालय पाठ्यक्रम का एक गंभीर दोष यह है, कि सामाजिक नैतिक व आध्यात्मिक मूल की अव्यवस्था व शिक्षा की अनुपस्थिती।"

यदि, हम अपने सभ्यता और संस्कृति को सुरक्षित और विकसित करना चाहते है, तो प्रत्येक शिक्षा संस्थान मे धार्मिक और नैतिक शिक्षा का उपयुक्त आयोजन किया जाना आवश्यक है । विद्यालय पाठ्यक्रम धार्मिक व नैतिक शिक्षा को उचित स्थान मिलना चाहिये। अन्य विषयों को जितना महत्व मिलना चाहिए। क्योंकि व्यक्ती उसी से अपने जीवन दर्शन ,प्रेरणा ,आत्मिक बल प्राप्त करता है। सत्य, विनय करुणा, स्नेह, सहानुभूती, आत्मनिर्भरता, वीरता, आत्मत्याग ये नैतिक मूल्य ही एक व्यक्ती को चरित्रवान बनाते है। उनको अपनाकर ही , सच्चा सुख ,संतोष, आनंद प्राप्त हो सकता है ।आज हमारा समाज नैतिक पतन की ओर अग्रसर हो रहा है। हर व्यक्ति सदाचार के महत्त्व को समझता है। चरित्र बल का विकास करे तो, छल कपट पाखंड, व्यभिचार, षड्यंत्र और संघर्षो से हमारा समाज मुक्त हो सकता है। हर व्यक्ति सबसे पहले स्वयं को समय दे चिंतन-मनन करे, आत्मविश्लेषण करे। अपने अंतरात्मा की आवाज को

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

अनसुना ना करे। परिवार ,मित्र, रिश्तेदारों और समाज के लिये भी समय निकाले विशेषतः बच्चे जो कल देश का भविष्य बनेंगे। उन्हे धर्म और नैतिक मूल्यों का महत्व समझाएं। एक एक अच्छी व्यक्ती से एक एक अच्छा परिवार बनेगा। एक परिवार से अच्छा समाज और अच्छा समाज सुसंस्कृत देश की पहचान बनेगा।

## 1.4.4. सामाजिक असुरक्षा, अशिक्षा, गरीबी:

**असुरक्षा:**

अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार "वह सुरक्षा जो समाज, उचित संगठनों क माध्यम से अपने सदस्यों के साथ घटित होने वाली कुछ घटनाओं और जोखिमों से बचाव के लिए प्रस्तुत करता है, सामाजिक सुरक्षा (Social security) है। ये जोखिम रोग, मातृत्व, अयोग्यता (disability), वृद्धावस्था तथा मृत्यु हैं।

इन संदिग्धताओं की यह विशेषता होती है कि व्यक्ति को अपना तथा अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिए नियोक्ताओं द्वारा सुरक्षा प्रदान की जाये। इस परिभाषा के अनुसार सरकारी नीति में कई सुरक्षात्मक कार्य सम्मिलित होन चाहिए। ऐसी सभी योजनाओं को सामाजिक सुरक्षा में लिया जाना चाहिए जो कर्मचारी को बीमारी के समय आश्वस्त कर सके अथवा जब श्रमिक कमाने योग्य न हो तो उस लाभान्वित कर सकें तथा उसे पुनः कार्य पर लगाने में सहायक हों। विलियम बैवरिज के अनुसार, ‘‘सामाजिक सुरक्षा योजना एक सामाजिक बीमा योजना है जो व्यक्ति को संकट के समय अथवा उस समय, जब उसकी कमाई कम हा जाय, तथा जन्म, मृत्यु या विवाह में होने वाले अतिरिक्त व्यय की पूर्ति के लिए लाभान्वित करती है। ‘‘इस प्रकार सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम से आशय यह है कि उससे व्यक्ति को जीवन में कुछ जोखिमों तथा आकस्मिक घटनाओं के भार से सुरक्षा मिलती है। जो भार वह स्वयं वहन करने में असमर्थ होता है, सामाजिक सुरक्षा योजना के माध्यम से वहन कर सकता है। हानि की मात्रा एक प्रकार से समाज के कई लोगों में

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

बंट जाती है। सामान्य तौर से सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों में निजी स्तर पर किये गये सुरक्षा कार्य सम्मिलित नही किये जाते। अगर यह सुरक्षा नही मिल पाती है तो मनुष्य असुरक्षित हो जाता है।

**समाजिक सुरक्षा के आवश्यक तत्व :**

योजना का उद्देश्य बीमारी की रोकथाम या इलाज करना होना चाहिए अथवा अनिच्छापूर्वक घटित हानि से सुरक्षा के लिए आय की गारण्टी देना जिससे श्रमिक पर निर्भर व्यक्ति लाभान्वित हो सके।

यह प्रणाली एक निश्चित अधिनियम के अन्तर्गत लागू की जानी चाहिए जो व्यक्तिगत अधिकारों तथा उत्तरदायित्व के प्रति सरकार, अर्द्ध-सरकारी संस्थाओं, गैर-सरकारी संस्थाओं को सामाजिक सुरक्षा सुविधाएं प्रदान करने के लिए बाध्य करे।

यह प्रणाली सरकारी, अर्द्ध-सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा प्रशासित की जानी चाहिए।

सुरक्षा को भली-भांति नियमित करने की दृष्टि से उपलब्ध सुविधाओं के प्रति कर्मचारियों का विश्वास होना आवश्यक है कि आवश्यकतानुसार उन्हें सामाजिक सुरक्षा सेवाओं के अन्तर्गत किये गये प्रावधान उपलब्ध होंगे तथा उनकी किस्म और मात्रा पर्याप्त होगी।

भारत में सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी सुविधाएं देने के लिए यह अधिनियम बनाये गये है :

- कर्मचारी प्रीविडेण्ट फण्ड अधिनियम, 1952;
- कोयला खान भविष्य निधि एवं विविध उपबन्ध अधिनियम, 1948;
- श्रमिक क्षतिपूर्ति संशोधित, 1984;
- प्रसूति लाभ अधिनियम, 1961;

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

- राज्य बीमा संशोधित अधिनियम, 1984;
- कर्मचारी भविष्य निधि एवं विविध व्यवस्थाएं अधिनियम, 1952;
- वृद्धावस्था पेन्षन योजना;
- अनुग्रह भुगतान संशोधित अधिनियम, 1984;
- सामाजिक सुरक्षा सर्टीफिकेट, 1982 आदि।

**सामाजिक सुरक्षा के उद्देश्य :**

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्राणी होने के कारण उसको अनेक आवश्यकताओं का सामना करना पड़ता है। वह कभी दूसरों को आश्रय प्रदान करता है तो कभी स्वयं ही उसे दूसरों पर आश्रित रहना पड़ता है। आधुनिक यांत्रिक युग में वह अनेक प्रकार की दुर्घटनाओं का शिकार हो सकता है। इन दुर्घटनाओं से मुक्ति दिलाने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जाय। संक्षेप में, सामाजिक सुरक्षा के उद्देश्य के अन्तर्गत निम्न तीन तत्वों को सम्मिलित किया जाता है-

- क्षतिग्रस्त व्यक्ति को क्षतिपूर्ति करना,
- क्षतिग्रस्त व्यक्ति के पुनरुत्थान का प्रयास करना, और
- खतरों की रोकथाम के लिए आवश्यक व्यवस्था, करना आदि।
- सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता

मनुष्य की दो अवस्थायें ऐसी होती है, उसे दूसरों पर आश्रित रहना पड़ता है और सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता पड़ती है -

**बचपन, और वृद्धावस्था,**

इन दो अवस्थाओं के अतिरिक्त भी प्रौढ़ जीवन में वह अनेक प्रकार की कठिनाइयों से घिरा रहता है। इन कठिनाइयों से मुक्ति पाने के लिए सुरक्षा अनिवार्य है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

संक्षेप में निम्न कारणों से सामाजिक सुरक्षा अनिवार्य है -

- इससे राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि होती है।
- मानव शक्ति की रक्षा में सहायक है।
- इसके परिणामस्परूप सामाजिक जीवन सुरक्षित एवं सुखद बनता है।
- इससे अनाथ बच्चों को अपनी शिक्षा जारी रखने में सहायता मिलती है।
- बेरोजगारी या काम छूटने की हालत में जीवन निश्चित रहता है।
- स्वास्थ्य लाभ से कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।
- राष्ट्रीय समृद्धि में वृद्धि होती है।
- सामाजिक और राष्ट्रीय कर्त्तव्य की दृष्टि से भी यह अनिवार्य है।
- इसके माध्यम से मानव मूल्यों और अधिकारों की रक्षा की जा सकती है।

**अशिक्षा:**

शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा की 'शिक्ष्' धातु में 'अ' प्रत्यय लगाने से बना है। 'शिक्ष्' का अर्थ है सीखना और सिखाना। 'शिक्षा' शब्द का अर्थ हुआ सीखने-सिखाने की क्रिया।

शिक्षा मनुष्य के भीतर अच्छे विचारों का निर्माण करती है, मनुष्य के जीवन का मार्ग प्रशस्त करती है। बेहतर समाज के निर्माण में सुशिक्षित नागरिक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। इंसानों में सोचने की शक्ति होती है इसलिए वो सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है लेकिन अशिक्षित मनुष्य की सोच पशु के समान होती है।

स्कूली शिक्षा के माध्यम से ही, हम व्यक्तित्व, मानसिक कुशलता, नैतिक और शारीरिक शक्ति का विकास करना सीखते हैं। बिना उचित शिक्षा के, एक व्यक्ति अपने जीवन के सभी शैक्षिक लाभों से वंचित रह जाता है। शिक्षा निजी और पेशेवर जीवन में सफलता की इकलौती कुंजी है। शिक्षा हमें विभिन्न प्रकार का ज्ञान और कौशल को प्रदान करती है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

आधुनिक युग में शिक्षा का महत्व पहले की अपेक्षा काफी बढ़ गया है। लोगों को अपना जीवन यापन करने, अपने जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए शिक्षा की आवश्यकता है। शिक्षा जीवन को बेहतर बनाने वाली संभावनाओं तक पहुँचती है। आज सिर्फ ज्ञान प्राप्त करना ही काफी नहीं, औद्योगिकरण के युग में ज्ञान के प्रयोग पर अधिक बल दिया जाता है।

**शिक्षा का भारतीय अर्थ:** शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा के शिक्ष् धातु से बना है जिसका अर्थ है। ज्ञानोपार्जन अथवा सीखना है। शिक्षा विकास का मूल साधन है। शिक्षा के जरिए मनुष्य के ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि करके उसके अनुवांशिक गुणों को निखारा जा सकता है और उसके व्यवहार को परिमार्जित किया जा सकता है।

**गरीबी**

**गरीबी का अर्थ :** गरीबी उस समस्या को कहते हैं जिसमें व्यक्ति अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ यथा, रोटी, कपड़ा और मकान को पूरा करने में असमर्थ होता है। अधिक दृष्टिकोण से उस व्यक्ति को गरीब या गरीबी रेखा के नीचे माना जाता है।

गरीबी के आकलन के लिये विभिन्न देशों में मान्य पारिभाषिक व्यवस्था का प्रयोग किया गया है । भारत में गरीबी एक मूलभूत आर्थिक एवं सामाजिक समस्या है भारत एक जनाधिक्य वाला देश है आर्थिक विकास की दृष्टि से भारत की गिनती विकासशील देशों में होती है। आर्थिक नियोजन की दीर्घावधि के वाबजूद भारत को गरीबी की समस्या से निजात नहीं मिली है ।

**गरीबी रेखा की अवधारणा (Concept of Poverty Line):**

गरीबी रेखा का आधार कैलोरी ऊर्जा को माना जाता है भारत में छठवीं पंचवर्षीय योजना में कैलोरी के आधार पर गरीबी रेखा को परिभाषित किया गया है । इसके अनुसार गरीबी रेखा का तात्पर्य ग्रामीण क्षेत्र में 2400 केलोरी तथा शहरी क्षेत्र में 2100

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

कैलोरी ऊर्जा के प्रतिव्यक्ति उपयोग से है । व्यय के आधार पर गरीबी रेखा सातवीं पंचवर्षीय योजना में गरीबी रेखा 1984-85 की कीमतों पर प्रति परिवार प्रतिवर्ष 6400 रूपयें का व्यय माना गया था ।

यूरोपीय देशों में गरीबी की अवधारणा को परिभाषित करने के लिये सापेक्षिक गरीबी के आधार पर आकलन किया जाता है उदाहरणार्थ किसी व्यक्ति की आय राष्ट्रीय औसत आय के 60 प्रतिशत कम है तो उस व्यक्ति को गरीबी रेखा के नीचे माना जा सकता है । औसत आय का आकलन विभिन्न मापदण्डों से किया जा सकता है।

योजना आयोग ने 2004-05 में 27.5 प्रतिशत गरीबी मानते हुये योजनाएं बनायी इसी अवधि में विशेषज्ञ समूह का गठन किया था। जिसने पाया कि गरीबी तो इससे कहीं ज्यादा 37.2 प्रतिशत थी इसका अर्ध है कि मात्र आकड़ों के दाये-बाये करने से ही 100 मिलियन लोग गरीबी रेखा में शुमार हो जाते है।

**राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन:** राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन ने अपना तथा सर्वेक्षण प्रतिवेदन 20 जून, 2013 को जारी किया। रिर्पोट के अनुसार देश के ग्रामीण इलाकों में सबसे निर्धन लोग औसतन मात्र 17 रूपये प्रतिदिन और शहरों में सबसे निर्धन लोग 23 रूपयें प्रतिदिन में जीवन यापन करते है। 68वें सर्वेक्षण रिर्पोट की अवधि जुलाई, 2011 से जून 2012 तक थी।

यह सर्वेक्षण ग्रामीण इलाकों में 74.96 गांव और शहरों में 52.63 इलाकों के नमूनों पर आधारित है। अखिल भारतीय स्तर पर औसतन प्रतिव्यक्ति मासिक खर्च ग्रामीण इलाकों में करीब 14.30 रूपये जबकि शहरी इलाकों में 26.30 रूपयें रहा। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन ने कहा इस प्रकार से शहरी इलाकों में औसतन प्रतिव्यक्ति मासिक खर्च ग्रामीण इलाकों के मुकाबले लगभग अप्रतिशत अधिक रहा।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

ग्रामीण भारतीयों ने वित्त वर्ष 2011-12 के दौरान खादय पर आय का औसतन 52.9 प्रतिशत खर्च किया जिसमें मोटे अनाज पर 10.8 प्रतिशत दूध और दूध से बने उत्पादों पर 8 प्रतिशत पेय पर 7.9 प्रतिशत और सब्जियों पर 6.6 प्रतिशत भाग शामिल है।

**भारत में गरीबी के कारण (Causes of Poverty in India):**

स्वतंत्रता से लेकर आज तक गरीबी भारत की प्रमुख समस्या बनी हुई है। योजनाबद्ध विकास के छह दशक और पंचवर्षीय योजनाओं में गरीबी उन्मूलन को प्रमुख लक्ष्यों में सम्मिलित किये जाने के बावजूद गरीबी से नहीं उभरना विकास की योजनाओं पर एक प्रश्न-चिन्ह है। भारत में गरीबी के लिए अनेक कारण उत्तरदायी है जिनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं:

योजनाओं के कारगर क्रियान्वयन का अभाव भारत में योजनाओं के कारगर क्रियान्वयन का अभाव गरीबी का प्रमुख कारण है। स्वतंत्रता के बाद गरीबों के उत्थान के लिए खूब योजनाएँ बनी। आज भी गरीबी उन्मूलन के नाम पर कई योजनाओं की घोषणा होती है।

वर्तमान में गरीबों के नाम पर अनेक योजनाएँ क्रियान्वयन में हैं, किन्तु गरीबी की समस्या जस की तस है। विगत वर्षों में गरीबी उन्मूलन की योजनाओं पर करोडों रूपयें पानी की तरह बहा दिया गया।

गरीबी उन्मूलन की योजनाओं में भ्रष्टाचार बड़े पैमाने पर हैं। गरबों के लिए बनी योजनाओं का पूरी जानकारी गरीबों को नहीं है। गरीबों के लिए बनी योजनाओं में आवंटित राशि जरूरतमन्दों तक कम मात्रा में पहुंची। आज गरीबों के उत्थान के लिए नई योजनाओं की अधिक आवश्यकता नहीं है योजनाएँ तो पहले से ढेरों की संख्या में है, बस आवश्यकता गरीबी उन्मूलन की योजनाओं के कारगर क्रियान्वयन की है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

जनाधिक्य तीव्रता से बढ़ रही जनसंख्या गरीबी का बड़ा कारण है। विकराल जनसंख्या के सामने अथाह प्राकृतिक संपदा सीमित नजर आने लगी है। भारत ने एक अरब से अधिक जनसंख्या के साथ नयी सहस्त्राब्दि में प्रवेश किया है। जनसंख्या की वर्तमान वृद्धि दर यदि भविष्य में भी बनी रहती है। तो अगले वर्षों में भारत जनसंख्या के मामले में चीन को पीछे छोड़ सकता है। जनसंख्या वृद्धि दर के साथ रोजगार के अवसर नहीं बढ़ रहे है। नतीजन गरीबी की समस्या मुखर बनी हुई है।

आर्थिक विषमता बढ़ती आर्थिक विषमता गरीबी का बड़ा कारण है। भारत में आर्थिक प्रगति के साथ आर्थिक विषमता भी बढ़ी है। विगत वर्षों में धनिकों और गरीबों के बीच की खाई तीव्रता से बढ़ी है। धनी और धनिक हुए है तथा गरीबों की स्थिति अधिक दयनीय हुई है। आर्थिक उदारीकरण के प्राप्त होने के बाद आर्थिक विषमता की स्थिति विकट हुई है। योजनाबद्ध विकास और आर्थिक उदारीकरण में आर्थिक विषमता के बढ़ने के कारण शहरों और गांवों में गरीबी की दशा में सुधार देखने को कम मिलता है।

भूखी निर्माण की धीमी गति वित्तीय संसाधनों के अभाव के साथ पूजी निर्माण की गति धीमी है पूजी निर्माण के कम होने के कारण ओद्योगिक विकास की गति तेज नहीं हो सकी। ओद्योगिक विकास की दर ऊँची नहीं होने के कारण लोगों को रोजगार के अधिक अवसर मुहैया नहीं हो सके रोजगार सृजन के अभाव में गरीबी की समस्या विकट बनी हुई है।

प्राकृतिक आपदाएँ और अकाल योजनाबद्ध विकास के छह दशक बाद तक भारतीय कृषि की मानसून पर निर्भरता बनी हुई है। मानसून की अनिश्चिता के कारण कृषि उत्पादन में उच्चावचन की प्रवृत्ति ब्याज है। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, ओला, बाढ़, भूचाल, आधी आदि प्राकृतिक घटनायें अर्थव्यवस्था को प्रभावित करती रहती है। प्राकृतिक आपदाओं से ग्रामीण परिवेश प्रभावित होता है और गरीबों पर अधिक भार पड़ता है।

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

उत्पादन की परम्परागत तकनीक भारत में उत्पादन के क्षेत्र में आधुनिक प्रोद्योगीकी का आभाव है शोध एवं अनुसंधान पर कम निवेश किया गया है। निजी क्षेत्र में नवीन प्रौद्योगीकी पर अधिक ध्यान नहीं दिया है। पुरानी तकनीक के काम में लेने के कारण भारतीय उत्पादन अतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं कर सकें। योजनाबद्ध विकास के दौर में विदेशी मुद्रा भण्डार के नहीं बढ़ पाने के कारण औद्योगिक विकास तीव्र गति नहीं पकड़ सका। नतीजन देश में गरीबी की समस्या बढ़ी

## सारांश

1. अपनी नैतिक जिम्मेदारी यह है कि समाज में परिवर्तन करना चाहिए। परिवर्तन के माध्यमों से विघटन रोकना चाहिए।
2. असुरक्षा गरीब महसूस करते हैं। उन्हें 'अक्षय' देना चाहिए। उसके अलग–अलग तरीके हमने ढूँढ़ने चाहिए।
3. मठ–मंदिरों का उपयोग 'देश' को पुनः खड़ा करने में हो सकता है।
4. हम में विश्व का गुरु बनने की क्षमता है। एक आत्मनिर्भर समाज खड़ा करें।

## अवधारणात्मक शब्दों का अर्थ (Meaning of Conceptual terms)

- **वैयक्तिक विघटन :** जब समाज मे व्यक्ति समाज स्वीकृत व्यवहार मानकों से हटकर कार्य करने लगता है एवंम परिवर्तित परिस्थितियों मे अनुकूलन नही कर पाता तो विघटन की प्रक्रिया जन्म लेती है। वैयक्तिक विघटन समाज में कई रूपों मे अभिव्यक्त होता है। जैसे: मद्यपान, मादक द्रव्य सेवन, व्यसनाधीनता, अपराध, वेश्यावृत्ति, आत्महत्या आदि।
- **पारिवारिक विघटन :** परिवार के सदस्य मे एकमत न रहना, परिवार मे सामंजस्य की प्रक्रिया को कम कर देता है। परिवार के सदस्यों के बीच का भावपूर्ण नियंत्रण की कमी पारिवारिक विघटन का कारण बनती है, क्योंकि नियंत्रण के

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

अभाव में अनुशासनहीनता बनती है। पारिवारिक विघटन की स्थिति, पति पत्नी के बीच संबंध विच्छेद, बच्चो मे अनुशासनहीनता एवंम पारिवारिक कलह के रूप मे देखने मे मिलती है। आर्थिक संकट, मतभेद, असाध्य और आकस्मिक कारण पारिवारिक विघटन के लिए जिम्मेदार होते हैं।

- **सामुदायिक विघटन :** जब समुदाय के अंतर्गत इस तरह की समस्याएं विकसित होने लगे की समस्याओं की वजहसे, सामुदायिक जीवन चुनौतीपूर्ण हो जाये, तब सामुदायिक विघटन की प्रक्रिया जन्म लेती है। सामुदायिक विघटन की स्थिति तब भी आती है जब समुदाय के अंदर अनेक संस्थाए अपने कायदेकानू के आधार पर कार्य न कर रही हो और संस्थओं में संघर्ष चल रहा हो। संस्थाएं अपने कार्य अन्य संस्थाओं को हस्तांतरित कर रही हो, लोग रिश्वत ले रहे हो, नफेखोरी बढ रही हो, बेरोजगारी बढ रही हो, गरिबी फैल रही हो, अत्याचार बढ रहा हो, पुराने कायदे कानून और नये कायदों में सामंजस्य न रहा हा हो।

## स्व–मूल्यांकन (Self-Assesment)

### दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long answer type questions)

1. आधुनिक जीवन पद्धति के स्परूप को स्पष्ट कीजिए।
2. सामाजिक विघटन के स्वरूप को समझाइये।
3. नैतिक मूल्यों से आप क्या समझते हैं? समाज में इनकी क्या उपयोगिता हैं?
4. पाश्चात्य जीवन शैली से आ रहे दोषों को स्पष्ट कीजिए।
5. भारतीय समाज के सम्मुख कौन–सी समस्याएं क्या हैं?

### लघु उत्तरीय प्रश्न (Short answer type questions)

1. वैश्वीकरण को स्पष्ट कीजिए।
2. अशिक्षा के दुष्प्रभावों को लिखिए।
3. उपयोगितावाद क्या हैं?
4. सामाजिक सुरक्षा को स्पष्ट कीजिए।
5. मानवाधिकार क्या हैं?

### अति लघुउत्तरीय / वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Very short/ Objective type questions)

**ISBN : 978-81-966958-4-2**

## प्रदत्त कार्य (Assignment)

- जातिगत संघर्ष के कारण ढूँढ़ना। घटना स्थल पर पहुँच कर जानकारी लेना। सत्यशोधक टोली बनाना।
- किसी एक स्थान पर 'प्याऊ' प्रारंभ करके धीरे–धीरे अन्य समस्याओं की पहचान करके एक बस्ती के संपर्क में हमेशा रहे।
- विद्यमान समस्या सुलझाने वाले संगठनों से परिचय करें और उपक्रमों में सम्मिलित होकर अनुभव लिखें और करें।

## संदर्भ (References)

1. केंद्र तथा राज्य शासन का 'गरीबी और अशिक्षा' संबंधी कोई भी रिपोर्ट प्रकाशन : राज्य शासन
2. 'कायापलट' – ले. आण्णा हजारे।
3. ब्रिटिश पूर्व भारतीय शिक्षण व्यवस्था – ले. धर्मपाल (पुनरुत्थान विद्यापीठ, गुजरात)
4. भारत को जानिये – उद्‌गम, विकास, स्थिति (1916), ले. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर